जाति-भेद

उसकी उत्पत्ति और वृद्धि, उससे हानियां और उनके उपाय

लेखकः—

श्री पं० गङ्गाप्रसाद एम० ए०,

रिटायर्ड चीफ जस्टिस टिहरी गढ़वाल राज्य

तथा

भूतपूर्व प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा।

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्म्मणा वर्णतां गतम् ॥

—महाभारत, शांति पर्व ।

अर्थ—वर्णों की कोई विशेषता नहीं। सब जगत् ब्रह्म का रचा हुआ है। ब्रह्म से रचा जाने के पश्चात् कर्मों के भेद से भिन्न भिन्न वर्णों को प्राप्त हुआ।

द्वितीयवार १०००] सं० २००६ वि० [मूल्य १॥)
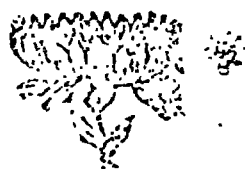
दूसरे संस्करण की भूमिका

यह पुस्तक मेरे लिखे अंगरेज़ी ग्रन्थ Caste System "कास्ट सिस्टम" का हिन्दी अनुवाद है जो पहली बार श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा युक्त प्रान्त की ओर से सन् १९१६ ई० में छपा था। मूल अंगरेज़ी पुस्तक के अनुवाद गुजराती, मरहटी, केरल व आन्ध्र भाषा में भी होकर प्रकाशित हुए।

हिन्दी अनुवाद के नये संस्करण के छपने में युद्ध की कठिनाइयों और काग़ज़ के न मिलने के कारण बहुत विलम्ब हुआ। उसकी मांग बराबर बनी रही। अब यह नया संस्करण सभा की ओर से संशोधित व परिवर्धित रूप में प्रकाशित हो रहा है। ३ व ४ अध्याय में कई प्रकार के संशोधन हुए हैं और सन् १९२१, १९३१ व १९४१ की मनुष्य संख्या व पाकिस्तान के कारण देश विभाजन से जो सामाजिक व राजनैतिक परिवर्तन हुए उनको दृष्टि में रखकर पुस्तक वर्तमान परिस्थिति के पूर्णतया अनुरूप Uptodate हो गई है। भारत के नवविधान Constitution में अस्पृश्यता बिलकुल वर्जित कर दी गई है; और उसके आधार पर प्रान्तीय धारा सभाओं ने ऐसे कानून बनाये हैं जिससे शूद्रों पर जो सामाजिक अत्याचार होते थे, वे दूर हो जांय। तो भी कुरीतियां, जो सैकड़ों वर्षों से प्रचलित हैं, केवल, कानून बनाने से दूर नहीं हो सकती, जब तक कि जनता के हृदय में परिवर्तन न हो। इसके लिये सामाजिक सुधार की बहुत आवश्यकता है। यह पुस्तक उस सुधार के प्रचार में बहुत सहायक होगी। आशा है जनता इससे उचित लाभ उठावेगी।

जयपुर
८।१२।४९ } गंगाप्रसाद

हिन्दी-अनुवाद की भूमिका।

—::o::—

यह पुस्तक अंग्रेजी भाषा में लिखी गई थी और पहिले सन् १९०० ई० में छपी, सन् १९१० ई० में कुछ बढ़ाकर दोबारा छपवाई गई। आर्यभाषा में छपवाने का पहले से ही विचार था। कुछ वर्ष हुए मैंने पहिले अध्याय और दूसरे अध्याय के अधिकांश का अनुवाद भी कर लिया पर अनवकाशवश शेष का अनुवाद नहीं कर सका। अब मेरे मित्र बा० रघुनन्दनशरण दूबलिश एम० ए० ने शेष का भाषान्तर करके उस की पूर्ति कर दी है। उक्त महाशय ने अंग्रेजी से अनुवाद नहीं किया था किन्तु गुजराती भाषान्तर से जो बम्बई प्रान्तस्थ भारोल-निवासी पं० गणपतिराम प्राणनाथ द्विवेदी ने सन्१९१२ ई० में छपवाया था। गुजराती भाषान्तर में कुछ त्रुटियों थीं और अनुवाद का अनुवाद होने से कुछ भाषा की भी त्रुटियां हो गई थीं। मैंने उन को यथा शक्ति शुद्ध कर दिया है और अब भाषान्तर मूल के अनुकूल हो गया है। भाषा यथाशक्ति सरल रक्खी गई है चाहे ललित न हो। आशा है कि पाठकगण भाषा की ओर अधिक ध्यान न देकर आशय पर विचार करेंगे।

मैं बाबू रघुनन्दनशरण का कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने इस अनुवाद की पूर्त्ति की। यदि वह इस कष्ट को न उठाते तो मेरा अनुवाद कदाचित् अधूरा ही पड़ा रहता।

—गङ्गाप्रसाद

सूचीपत्रः—

जाति-भेद की परिभाषा—

पहला अध्याय ।

जाति-भेद प्राचीन नहीं है ।

दूसरा अध्याय ।

जाति-भेद की उत्पत्ति और उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि

तीसरा अध्याय

जातिभेद से होनेवाली हानियां।

अशक्तता और इसके कारण उनका हिन्दूमत छोड़ने के लिये उद्यत रहना। अन्य मतों का सामना करने में हिन्दूधर्म की दुर्बलता। बौद्धधर्म के प्रचार के विषय में दत्त महाशय की सम्मति। शूद्रों पर सामाजिक और धार्मिक अन्याय बौद्धमत के फैलाने का मुख्य कारण था। बौद्धधर्म की अवनति और उसके मुख्य कारण। हिन्दूधर्म का पुनः प्रचार। पौराणिक हिन्दूधर्म। जातिभेद का पुनः प्रचार और उसकी वृद्धि। शूद्रों को अब भी नीच बना रक्खा है। वैश्य जाति का छिन्न भिन्न होना। सुनार, लुहार, बढ़ई कुम्हार आदि व्यवसायों में जातिभेद के पुनः प्रचार का हानिकारक परिणाम। मुहम्मदीमत का प्रचार। शूद्रों पर सामाजिक अन्याय इसका मुख्य कारण था। बंगवासी मुसलमानों का उदाहरण। भविष्य में भी ऐसा ही भय है। वर्तमान स्थिति। हिन्दूधर्म और ईसाईधर्म। शूद्रों पर न्याय की आवश्यकता। ईसाई-धर्म का मुख्य बल हिन्दूधर्मकी दुर्बलता है। दूसरे धर्मों में यह निर्बलता नहीं। बौद्धधर्म में धार्मिक समानता, ईसाईधर्म में और मुहम्मदीधर्म में समानता, सामान्यतः हिन्दुओं पर शूद्रों के अहसान। ...

५—ब्राह्मणों के अनुचित अधिकार और उसका उन पर बुरा परिणामः—पौराणिक काल में ब्राह्मणों के अनुचित अधिकार। इसका हानिकारक प्रभाव। ब्राह्मण जाति की वर्तमान शोकजनक अवस्था। जातिभेद शूद्र और ब्राह्मण दोनों के लिये बराबर हानिकारक है। ... ...

चौथा अध्याय

जातिभेद की हानियों को दूर करने के लिये कुछ विचार:—

* ओ३म् *

जाति-भेद

लक्षण

जाति-भेद—से हमारा अभिप्राय उस भेद से है जो आज कल भारत वर्ष में फैला हुआ है, जिसके अनुकूल मनुष्य का खान पान, विवाह और अन्य सामाजिक व्यवहार केवल उसी जाति या बिरादरी में हो सकता है कि जिसमें उसका जन्म हुआ है और उसका व्यवसाय और सामाजिक व्यवस्था भी बहुधा उसी जाति के अनुकूल होती हैं, चाहे उसके गुण, कर्म, स्वभाव और उसकी इच्छा और योग्यता कैसी ही हों।

वर्णव्यवस्था—जो प्राचीन आर्यावर्त्त में प्रचलित थी और जिसके अनुकूल सब मनुष्य चार वर्णों * में विभक्त थे, जुदी वस्तु थी। उसकी बुनियाद जेसा हम आगे दिखलायेंगे गुण, कर्म और स्वभाव पर थी न कि जन्म पर।

---

* वर्ण शब्द का अर्थ 'जाति' नहीं है। यह शब्द "वृ" धातु से निकला है (जिसके अर्थ वरना) छाँटना, या पसन्द करना है। इसलिये वर्ण उस व्यवसाय या धन्धे के अनुकूल होगा जिसको कोई मनुष्य अपने लिये पसन्द करता है। जाति शब्द "जन्" धातु से बनता जिसके अर्थ पैदा होता है।

वेद एक ईश्वर का उपदेश करते हैं, जो सारे संसार का कर्त्ता और सब मनुष्यों का पिता है। इसलिये सब मनुष्य आपस में भाई हैं और ईश्वर की दृष्टि में सब बराबर हैं। यदि कुछ भेद है तो केवल गुण और कर्म का है। कोई और भेद जिसकी नींव केवल जन्म पर हो ईश्वर की दृष्टि में निन्दित है, और उसके सृष्टिक्रम के विरुद्ध है॥

पहला अध्याय

जाति-भेद प्राचीन नहीं है

इस बात को विद्वान् लोग बहुधा मानने लगे हैं कि प्राचीन आर्य्यावर्त्त में अब जैसा जाति-भेद न था।

(१) वेद के प्रमाण

द जो सबसे प्राचीन पुस्तक हैं इसकी आज्ञा नहीं देते। वेद में मनुष्यों के चार वर्ण का विभाग कहे हैं, अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र। यह अभी कहा जा चुका है कि यह वर्ण-व्यवस्था आज कल के जाति-भेद से बिलकुल भिन्न थी। जिस वेद मन्त्र में इसका वर्णन है, उसको जाति भेद का पोषक बनाने के लिये उसके अर्थ का अनर्थ किया गया है। वह मन्त्र यह है:—

ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोअजायत ॥

ऋग् । १० । ९० । ११

हमारे पौराणिक भाई इसका अर्थ यह करते हैं —"ब्राह्मण ब्रह्मा के सिर से, क्षत्रिय उसके बाहुओं से, वैश्य उसके जंघा से और शूद्र पैरों से उत्पन्न हुए"।

परन्तु यह अर्थ अशुद्ध है और मन्त्र का शब्दार्थ यह है:—
"ब्राह्मण उसका (अर्थात् मनुष्य—समाज का) मुख है, क्षत्रिय बाहु बनाया गया है। जो वैश्य, है वह उसका मध्य भाग है, और शूद्र पाँव बनाया गया है"।

मन्त्र की पूर्वापर संगति मिलाने से मालूम होगा कि मन्त्र का ठीक अर्थ यही है। इस सूक्त के नवें मन्त्र में मनुष्य समाज का विराट् रूप से एक पुरुष के समान वर्णन किया गया है। १० वें मन्त्र में यह प्रश्न किया गया है:—

मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरूपादा उच्येते

अर्थात् "उसका मुख क्या है, बाहू क्या हैं, मध्य भाग और पांव क्या कहे जाते हैं" ?

११ वां मन्त्र इसी प्रश्न का उत्तर है और उसका सत्य अर्थ वही है जो ऊपर हमने दिया है *।

---

* इस मन्त्र और उसके अर्थ की पूरी व्याख्या "मनुष्य समाज" नाम के पुस्तक में की गई है जो आर्य्य प्रतिनिधि सभा—यक्तप्रान्त से मिलेगी।

इस मन्त्र से किसी तरह जाति भेद की पुष्टि नहीं होती, किन्तु इसमें मनुष्य-समाज का वर्णन एक पुरुष शरीर के रूपक द्वारा किया गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों का सम्बन्ध मनुष्य समाज से ऐसा ही है जैसा कि सिर, बाहु, मध्यभाग और पांव का शरीर से। ब्राह्मण जो विद्या पढ़ते और दूसरों को धर्म का उपदेश देते हैं अथवा अन्य प्रकार समाज के नेता हैं मनुष्य-समाज के मुख वा सिर कहे गये हैं। क्षत्रिय जो बल धारी हैं और मनुष्यों की रक्षा करते हैं, समाज की भुजा बतलाये गये हैं। वैश्य जो वाणिज्य व्यवहार के लिये देश देशान्तर जाते हैं, खेती व जमादारी करते हैं तथा बढ़ई, लुहार, सुनार आदि शिल्प व व्यवसाय करते हैं समाज के मध्य भाग रूप हैं। और शूद्र जो विद्या रहित होने से केवल दूसरों की सेवा कर सकते हैं समाज के पांव रूप हैं। यह जातिभेद नहीं है, किन्तु कामों की बांट के अनुकूल मनुष्य-समाज के विभाग का वर्णन है। इसकी बुनियाद जन्म पर नहीं किन्तु कर्मों पर है। और इससे अच्छा क्या विभाग हो सकता है? इसमें सब से ऊँचा स्थान विद्या और सदाचार को दिया गया है दूसरा बल को और धन का, और क्या मनुष्य के शरीर में इनके यही स्थान नहीं पाये जाते? सिर या मस्तिष्क जो ज्ञान का स्थान है शरीर में सब से ऊँचा रक्खा गया है, उसके नीचे बल की प्रतिनिधि भुजा हैं और उनके नीचे धन के स्थानापन्न उदर या मध्य भाग जंघा हैं और सबसे नीचे पांव, कि जो सारे शरीर की सेवा करते हैं। क्या कोई मत इससे अच्छे विभाग का अभिमान कर सकता है कि जिसमें ज्ञान और विद्या, आचार और धर्मपरायणता को धन और बल दोनों के ऊपर स्थान

दिया गया है ? इसके विरुद्ध वर्तमान यौरप व अमरीका में सबसे ऊँचा स्थान धन को दिया जाता है।

निदान यह मन्त्र जन्मगत जाति-भेद का उपदेश नहीं करता किन्तु कर्मों का विभाग सिखलाता है, जिसके बिना कोई सभ्य समाज जीवित नहीं रह सकता।

न वेदों में कोई और मन्त्र ऐसा है जिससे कुछ भी जाति-भेद को सहायता मिलती हो। वेदों का उपदेश और सार उसके बिल्कुल विरुद्ध है।

ऐसे मन्त्र मिलने कठिन नहीं जिनसे साफ़ पाया जाता है कि एक ही कुल के लोग अपनी-अपनी इच्छा और योग्यता के अनुसार अलग-अलग व्यवसाय या काम करें। नीचे लिखे मन्त्र में उपासक कहता है:—

कारुरहं ततोभि (षगुपल) प्रक्षिणीनना । नाना धियो वसूयवोऽनुगा इव तस्थि मेन्द्रायेन्दो परिस्रव ।। ऋग ९ । ११२ । ३ ।

"मैं कवि हूँ, मेरा पिता वैद्य है, माता चक्की पीसती है। जैसे गाय (अलग-अलग खेतों में चरती हैं) वैसे हम भी भिन्न २ व्यवसाय से सुख और ऐश्वर्य की कामना करते हैं। हे ईश्वर, हम पर सुख की वर्षा कर"।

बहुत से प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। यौरप के विद्वान् भी अब, एक मत होकर मानते हैं कि वेदों के समय में जाति-भेद नहीं था। दो या तीन प्रसिद्ध विद्वानों की सम्मति नीचे लिखी जाती है:—

प्रोफ़ेसर मैक्समूलर लिखते हैं—

"यदि सब प्रमाण सामने रखकर हम प्रश्न करें क्या जाति-भेद जैसा मनु में और आज दिन पाया जाता है, सबसे प्राचीन वेदों के धर्मोपदेश में शामिल था ?—तो हम निश्चित रूप से उत्तर दे सकते हैं कि नहीं।" *

वीवर Weber साहब वेदों के समय की बाबत् लिखते हैं—"अभी तक कोई जातियां नहीं हैं। लोग अभी तक एक, और मिले हुये हैं और एक ही विश नाम से पुकारे जाते हैं× ।

महाशय रमेशचन्द्रदत्त भी कहते हैं कि सारे वेदों में "हमें एक भी वाक्य समाज के जातियों में छिन्न-भिन्न होने का सूचक नहीं मिलता।" ×

—:o:—

२ उपनिषदों के प्रमाण

उपनिषद् जो वेदों को छोड़ और सब ग्रन्थों से अधिक प्राचीन और प्रामाणिक हैं जातिभेद की आज्ञा नहीं देते। किन्तु उनकी शिक्षा जातिभेद के बिलकुल विरुद्ध है। उपनिषदों के समय में उन्नति का मार्ग सब लोगों के लिये खुला था और नीच कुल में जन्म लेना उसमें बाधा नहीं डालता था।

छान्दोग्य उपनिषद् में एक सुन्दर कथा है कि सत्यकाम जो एक दासी के पुत्र थे, परन्तु जिनका हृदय विद्या और

*Chips from a German workshop Vct. II Page 307.

×R. C. Dutt's Civilisation in Ancient India.

सत्य के प्रेम से भरा था ब्रह्म-विद्या सीखने के लिये हारिद्रुमत गौतम ऋषि के पास गये। ऋषि ने उनका गोत्र पूँछा। बालक ने अत्यन्त सरलता से कहाः—

नाहमेतद् वेद भो यद् गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छंमातरꣳ सामा पृत्यब्रवीद् बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवनेत्वा-मलभे साहमेतन्नवेद यद् (गोत्रस्त्वमसि) जवाला तु ना-माऽहमस्मि सत्यकामा नाम त्वमसीति सोऽहꣳ सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति।

(अर्थ) "हे प्रभो! मैं यह नहीं जानता कि मेरा गोत्र क्या है। मैंने माता से पूछा था उसने मुझसे कहा कि 'यौवन काल में मैं बहुता की सेवा करती फिरी और तू मेरे गर्भ में आया है। सो मैं यह नहीं जानती कि तेरा गोत्र क्या है। पर जवाला मेरा नाम है और सत्यकाम तेरा नाम है। सो हे प्रभो! मैं सत्यकाम जाबाल "(अर्थात् जवाला का पुत्र सत्यकाम) हूँ"।

बालक की सच्चाई और सरलता से मोहित होकर ऋषि ने उसको अपना शिष्य बनाया और उसको ब्रह्म विद्या सिखलाई। इस प्रकार जन्म से नीच होने पर भी सत्यकाम जाबाल ऋषि पदवी को प्राप्त हुये। उपनिषदों के समय में जातिभेद ऐसा अविद्यमान था कि बड़े-बड़े ऋषि और विद्वान् ब्राह्मण भी सच्चा ज्ञान प्राप्त करने के लिये एक क्षत्रिय के पास जाने में अपनी मान हानि नहीं समझते थे। उदाहरण के लिये छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है कि उद्दालक आरुणिं और उनका

पुत्र श्वेतकेतु क्षत्रिय राजा चित्र गाङ्गायनी के पास शिक्षा पाने के लिये गये। एक और राजा प्रवहण जैबलि ने उसी श्वेतकेतु को पुनर्जन्म के सिद्धान्त का उपदेश किया।

——::o::——

३ महाभारत के प्रमाण

महाभारत में बहुत से वचन नवीन डाले हुए हैं। तो भी उसमें अनेक श्लोक ऐसे पाये जाते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि प्राचीन वर्ण—व्यवस्था की नींव गुण कर्म पर थी न कि जन्म पर। शान्ति पर्व में भृगु जी भारद्वाज से कहते हैं:—

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मणा वर्णतां गतम्॥
कामभोगप्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रिय साहसाः।
त्यक्तस्वधर्म्मा रक्ताङ्गास्ते द्विजाः क्षत्रतां गताः॥
गोभ्यो वृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्योपजीविनः।
स्वधर्म्मान्नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः॥
हिंसानृतप्रिया लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः॥
इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरं गताः।
धर्मो यज्ञक्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते॥
इत्येते चतुरो वर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती।
विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभात् त्वज्ञानतां गताः॥

(अर्थ) कोई वर्णों की विशेषता नहीं है। यह सब जगत् ब्राह्म (अर्थात् ब्रह्मा का बनाया हुआ) है। ब्रह्मा से रच जाने पर कर्मों से वर्णता को प्राप्त हुआ। जो द्विज कामना और भोग में रत; तीक्ष्ण स्वभाव वाले क्रोधशील, साहसी; उत्तम द्विज धर्म को छोड़ रजो गुण युक्त हुए, वे क्षत्रिय हुए। गौ आदि पशुओं और खेती से वृत्ति (रोजगार) करने वाले; उत्तम द्विज धर्म पर न रह कर सत्व रजस दोनों गुणों से युक्त द्विज वैश्य हुए। जो हिंसा और झूंठ में लगे, लोभी हुए, सब प्रकार के कर्मों से जीविका करते हुए, शुद्धि से गिरे हुए और तमोगुण युक्त हुए वे शूद्र हुए। इस प्रकार कर्मों के भेद से द्विज भिन्न भिन्न वर्णों को प्राप्त हुए। धर्म, यज्ञ क्रिया आदि उनको नित्य वर्जित नहीं हैं, (अर्थात् वे उनके अधिकारी हैं)। ये चार वर्ण हैं जिनके लिये ब्रह्मा ने वेद * वाणी को सृष्टि के आदि में विधान किया, परन्तु जो लोभ से अज्ञानता को प्राप्त हो गये।

भारद्वाज फिर प्रश्न करते हैं:—

ब्राह्मणः केन भवति क्षत्रियो वा द्विजोत्तम।
वैश्यः शूद्रश्च विप्रर्षे तद् ब्रूहि वदतांवर॥

शान्ति पर्व अ० १८६ श्लो० १

अर्थ—हे द्विजों में श्रेष्ठ! कोई ब्राह्मण या क्षत्रिय और वैश्य

* क्या इससे साफ तौर पर स्वामी दयानन्द के इस दावे की पुष्टि नहीं होती कि परमेश्वर ने वेद मनुष्य मात्र के लिये दिये हैं, जिनमें शूद्र भी शामिल हैं? यह दूसरी बात है कि हम लोभादि के वश होकर उसको भुला देवें और उससे लाभ न उठावें।

त्रा शूद्र कैसे होता है ? हे महर्षि और श्रेष्ठ उपदेष्टा ! सो बतलाइये।

भृगु ने कहा—

जात कर्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः।
वेदाध्ययनसम्पन्नः षट्सु कर्मस्ववस्थितः।
शौचाचारस्थितः सम्यग्विघसाशी गुरुप्रियः।
नित्यं व्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मण उच्यते ॥
सत्यं दानमथाद्रोह अनृशंस्यं त्रपा घृणा।
तपश्च दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥
क्षत्रजं सेवते कर्म्म वेदाध्ययनसंगतः।
दानादाने रतःयस्तु स वै क्षत्रिय उच्यते ॥
विशत्याशु पशुभ्यश्च कृष्या दान रतिः शुचि।
वेदाध्ययनसम्पन्नः स वैश्य इति संज्ञितः ॥
सर्वभक्ष रतिर्नित्यं सर्व कर्म करोऽशुचिः।
त्यक्त वेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इतिस्मृतः ॥
शूद्रे चैतद् भवेल्लक्ष्यं द्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो ब्राह्मणो न च ॥

अ० १८६ श्लो० २–८

अर्थ—जो जातकर्म आदि संस्कारों से संस्कृत हो, शुद्ध हो, वेद पढ़ा हो, षट्कर्म में स्थित हो शुद्ध आचार में स्थित हो, यज्ञ करके भोजन करता हो, गुरु की सेवा करता हो नित्य,

नियम पर स्थिर हो, सत्यपरायण हो, वह ब्राह्मण कहलाता है। सत्य, दान, अद्रोह, अहिंसा, विनय, दया, तप, जहां दिखाई दे वह ब्राह्मण कहाता है। जो क्षत्रियों के कर्म करे, वेद पढ़ने में लगा रहे, दान देने और कर लेने में रत हो, वह क्षत्रिय कहाता है। जो पशु रखता हो, खेती और धन उपार्जन के अन्य कर्मों में लगा हो, शुद्ध हो और वेद पढ़ने में सम्पन्न हो, उसकी वैश्य संज्ञा है। जो सब प्रकार के (अभक्ष्याभक्ष्य) पदार्थ खाता हो, सब तरह के (कर्तव्याकर्तव्य) कर्म करता हो, उसको शूद्र कहते हैं। शूद्र में यह लक्षण हों, और द्विज में न हों, तो वह शूद्र नहीं रहता, और वह ब्राह्मण नहीं रहता।

४—मनुस्मृति के प्रमाण।

यह बात सिद्ध हो चुकी है कि असली मनुस्मृति सूत्रों में लिखी गई थी, श्लोकों में नहीं। वर्त्तमान (श्लोकबद्ध) मनुस्मृति बहुत प्राचीन नहीं और उसमें बहुत से श्लोक पीछे के डाले हुए भी हैं। तो भी उनके अनुकूल वर्णों की नींव केवल जन्म पर नहीं है।

उसमें लिखा है:—

विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः॥

अर्थ—ब्राह्मणों की बड़ाई ज्ञान से है, क्षत्रियों की बल से, वैश्यों की धन धान्य से, और शूद्रों की केवल जन्म से।

नीचे लिखे श्लोक से स्पष्ट है, कि जो मनुष्य द्विज कुल में जन्म लेकर उस वर्ण के कर्म नहीं करता था, वह शूद्र वर्ण में गिरा दिया जाता था—

योऽनधीत्य द्विजोवेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।

स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥

मनु० अ० २ श्लोक १६८

अर्थ—जो द्विज वेद न पढ़कर अन्यत्र श्रम करता है वह जीता हुआ कुटुम्ब सहित शीघ्र शूद्र हो जाता है ।

नीचे लिखे श्लोक से विदित है कि नीच वर्ण का मनुष्य ऊंचे वर्ण में आ सकता था—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ।

क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद् वैश्यात्तथैव च ॥

अ० १० श्लोक ६५

अर्थ—शूद्र ब्राह्मण हो जाता है और ब्राह्मण शूद्र हो जाता है। इसी तरह क्षत्रिय और वैश्य कुल में जन्मा हुआ भी (ऊंचे या नीचे वर्ण में जा सकता है)।

५—अन्य शास्त्रों के प्रमाण ।

आपस्तम्भ सूत्र में जो बहुत प्राचीन ग्रन्थ है ऐसा ही लिखा है—

अधर्मचर्य्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं
वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ १० ॥

धर्मचर्य्यया जघन्यो वर्णो पूर्वं पूर्वं
वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ ११ ॥

अर्थ—अधर्म करने से पहले वर्ण में जन्मा हुआ मनुष्य

नीच नीच वर्ण को प्राप्त होता है। धर्म करने से नीच वर्ण में जन्मा हुआ मनुष्य पूर्व पूर्व वर्ण को प्राप्त होता है।

६ पुराणों के प्रमाण।

पुराण वास्तव में नवीन ग्रन्थ हैं और उस समय रचे गये हैं जब जातिभेद की जड़ जम चुकी थी इसलिये इस में क्या आश्चर्य हो सकता है कि उन में जातिभेद के पोषक बहुत से श्लोक भरे हुए हों। परन्तु यह ध्यान देने योग्य बात है कि उनमें भी कुछ श्लोक ऐसे मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि इस गिरे हुए समय में भी लोग प्राचीन वर्णव्यवस्था को बिलकुल नहीं भूल गये थे। उदाहरण के लिए हम भागवत का प्रमाण देते हैं पहले चारों वर्णों के कर्म और लक्षण बतलाकर, (जो वैसे ही हैं जैसे मनुस्मृति और महाभारत में बतलाये गये हैं), भागवत के कर्त्ता लिखते हैं—

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्॥

अर्थ—जिस मनुष्य का जो लक्षण वर्ण की पहचान के लिये बतलाया है उसको यदि दूसरे वर्ण के मनुष्य में भी पावें तो उसको उसी वर्ण का समझें।

इसी भागवत में वैशम्पायन, युधिष्ठिर को ब्राह्मण के लक्षण बतला कर कहते हैं—

पञ्च लक्षणसम्पन्न ईदृशो यो भवेद् द्विजः।
तमहं ब्राह्मणं ब्रूयाम् शेषाः शूद्राः युधिष्ठिर॥

अर्थ— हे युधिष्ठिर ! पांच लक्षणों से युक्त जो ऐसा द्विज हो उस को मैं ब्राह्मण कहता हूँ, शेष शूद्र हैं। और भी लिखा है —

न कुलेन न जात्या वा क्रियाभिर्ब्राह्मणो भवेत् ।

चाण्डालोऽपि हि वृत्तस्थो ब्राह्मणः स युधिष्ठिर ॥

अर्थ—हे युधिष्ठिर, कुल वा जाति से कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता, क्रिया से होता है। चाण्डाल भी शुद्ध आचार वाला है तो वह ब्राह्मण है।

न जातिर्दृश्यते राजन् गुणाः कल्याणकारकाः ।

जीवितं तस्य धर्मार्थं परार्थं यस्य जीवितम् ।

अहोरात्रं चरेत्क्षान्ति तं देवाः ब्राह्मणं विदुः ॥

अर्थ—हे राजन् ! जाति कहीं दिखलाई नहीं देती। गुण कल्याण करने वाले हैं। जिस का जीवन धर्म और परोपकार के लिये हो, जो दिन रात सुन्दर कर्म करे उस को देव (विद्वान् लोग) ब्राम्हण जानते हैं।

शङ्कर नीति में जो स्वामी शंकराचार्य को लिखी कही जाती है, पर वास्तव में पौराणिक समय में बनी है लिखा है—

न जात्या ब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव न ।

शूद्रो न च वै म्लेच्छो भेदिताः गुण कर्मभिः ॥

अर्थ—यहां जाति (जन्म) से कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या म्लेच्छ नहीं होता, सब गुणकर्मों के भेद से होते हैं।

७ प्राचीन आर्य्यावर्त में दूसरे वर्णों से ब्राह्मण हो जाने के उदाहरण

प्राचीन वर्णव्यवस्था के जन्मपरक न होने के लिए ऊपर लिखे प्रमाण पर्याप्त हैं। यदि और प्रमाणों की आवश्यकता समझी जाय तो हम प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों से बहुत से क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के ब्राह्मण हो जाने के उदाहरण देंगे।

सत्यकाम जाबाल के दासी पुत्र से ब्राह्मण तथा ऋषि हो जाने की सुन्दर कथा हम छान्दोग्य उपनिषद् से उद्धृत कर चुके हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में कवष * की ऐसी कथा लिखी है।

सरस्वती के किनारे ऋषियों ने बड़ा यज्ञ किया। कवष भी उस में थे। पर ऋषियों ने उस को सोम रस नहीं दिया,

दास्याः पुत्रः कितवोऽब्राह्मणः कथं नो मध्येऽदीक्षिष्यति

यह दासी का पुत्र नीच जो ब्राह्मण नहीं, कैसे हमारे बीच में दीक्षा पा सकता है, ? पर कवष ज्ञानी थे। जब ऋषियों को यह ज्ञात हुआ तो उन को बुलाकर ऋषि पदवी दी। ऋग्वेदीय ऐतरेय ब्राह्मण और ऐतरेयउपनिषद् के कर्त्ता ऐतरेय भी, जैसा कि उन के नाम ही से विदित होता है, 'इतर" अर्थात् शूद्रा स्त्री के पुत्र थे। उन का पूरा नाम महिदास ऐतरेय था, जैसा कि ऐतरेय ब्राह्मण (१। ८। २) में लिखा है।

"एतद्ध स्म वै तद् विद्वानाह महिदास ऐतरेयः"

इस नाम की स्वामी शंकराचार्य्य व्याख्या करते हैं,

"महिदासो नामतः इतराया अपत्यमैतरेयः।"

---

* यह कौषीतकी ब्राह्मण में भी मिलती है।

अर्थात् महिदास नाम के इतरा (शूद्र) के पुत्र ऐतरेय ॥

महाभारत में इस प्रकार की और बहुत सी कथा मिलती हैं। व्यास जो वेदान्त सूत्र और महाभारत के प्रसिद्ध कर्त्ता थे पराशर ऋषि से एक कैवर्ती अर्थात् कहारी के पेट से पैदा हुए थे और उनके पिता पराशर चाण्डाली के पुत्र थे। इनका वर्णन महाभारत के वनपर्व में आया है।

जातोव्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्यास्तु पराशरः।
बहवोऽन्येपि विप्रत्वं प्राप्ता ये पूर्वमद्विजाः ॥

महाभारत।

अर्थ—व्यास कैवर्ती से पैदा हुए और पराशर चाण्डाली से, और बहुत से और भी द्विज जो पहिले शूद्र थे इसी प्रकार ब्राह्मण हो गए। वशिष्ठ के विषय में जो एक प्रसिद्ध वैदिक ऋषि थे, महाभारत में लिखा है—

गणिका गर्भ संभूतो वशिष्ठश्च महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तत्र कारणम् ॥

महाभारत।

अर्थ—महामुनि वशिष्ठ गणिका (वेश्या) के गर्भ से उत्पन्न हुए, परन्तु तप से ब्राह्मण हो गए, इससे संस्कार ही प्रधान है।

विश्वामित्र के जो जन्म के क्षत्रिय थे ब्राह्मण हो जाने की कथा ऐसी प्रसिद्ध है कि वह बहुत से प्राचीन ग्रन्थों में मिलती है, जैसे महाभारत के अनुशासन पर्व में लिखा है—

ततो ब्राह्मणात　　　　विश्वामित्रो महातपः
क्षत्रियः सोऽप्यथ तथा ब्रह्मवंशस्य कारकः।

अर्थ—तब महातपस्वी विश्वामित्र ब्राह्मणता को प्राप्त हुए, वह जन्म के क्षत्रिय थे, पर ब्राह्मणवंश (कौशिक-गोत्र) के कर्त्ता हुये ॥

महाभारत के आदि पर्व में लिखा है:—

क्षत्रियेभ्यश्च ये जाता ब्राह्मणास्ते च ते श्रुताः ।
विश्वामित्र प्रभृतयः प्राप्ताः ब्रह्मत्वमव्ययम् ॥

अर्थ—जो क्षत्रियों से उत्पन्न हुए थे और ब्राह्मण हो गए थे उनको तुमने सुना, अर्थात् विश्वामित्रादि जिन्होंने पूर्ण ब्रह्मत्व पाया।

शान्तिपर्व में विश्वामित्र का और क्षत्रियों के साथ जो इसी प्रकार ब्राह्मण हुए फिर वर्णन है:—

तत्रारिष्टषेणः कौरव्य ब्राह्मण्यं संशितव्रतः ।
तपसा महता राजन् प्राप्तवान् ऋषिसत्तमः ॥
सिन्धुद्वीपश्च राजर्षिर्देवापिश्च महातपाः ।
ब्राह्मण्यं लब्धवान् यत्र विश्वामित्रस्तथा मुनिः ॥
शल्य पर्व अ० ४ श्लोक ३६, ३७

अर्थ—हे राजन्! ऋषियों में उत्तम आरिष्टषेण जो कौरव वंश के क्षत्रिय थे और धर्म में दृढ़ थे, बड़े तप से ब्राह्मण हो गए। इसी प्रकार सिन्धुद्वीप राजर्षि और महातपस्वी देवापि ने ब्राह्मणता प्राप्त की, जैसे विश्वामित्र ने की थी।

वनपर्व में कुछ क्षत्रियों का वर्णन है जो ब्राह्मण हुए।

महावीर्य्यो दुरुत्तयो नाम पुत्रोऽभूत् ।
तस्य त्र्य्यारुण पुष्करिणो कपिश्च पुत्रत्रयमभवत् ।
तच्च त्रितयमपि पश्चाद्विप्रतामुपजगाम । ४ । १९।१०

अर्थ—महावीर्य्य के उरुत्तय नाम का पुत्र हुआ, उसके त्र्य्यारुण, पुष्करिण और कपि तीन पुत्र हुए। ये तीनों पीछे से ब्राह्मणता को प्राप्त हुए।

हरिवंश पुराण के ग्यारहवें अध्याय में दो वैश्यों का वर्णन है जो ब्राह्मण हुए—

नाभागारिष्ट पुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ ।

अ० ११ श्लोक ६५८

अर्थ—नाभागारिष्ट के दो पुत्र जो वैश्य थे, ब्राह्मण हो गये। भागवत पुराण से पता चलता है, कि नाभाग भी स्वयं वैश्य कुल में उत्पन्न नहीं हुआ था परन्तु अपने कर्मों से वैश्य बना था।

नाभागो नेदिष्टपुत्रोऽन्यः कर्म्मभिर्वैश्यतां गतः ।

स्कन्ध ६ अ० २ श्लोक २५

विष्णु पुराण से भी इसकी पुष्टि होती है:—

नाभागो नेदिष्ट पुत्रस्तु वैश्यतामगमत् । ४ । १ । १६

अर्थ—नेदिष्ट का पुत्र नाभाग वैश्यता को प्राप्त हुआ।

क्या इन प्रमाणों से यह स्पष्ट सिद्ध नहीं होता कि पुराणों

के अनुकूल भी प्राचीन समय में मनुष्य अपने गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार अपना वर्ण बदल सकता था।

एक ही कुल में चारों वर्ण के मनुष्य होने के प्रमाण भी मिलते हैं। वायु पुराण ऋग्वेद के दूसरे मंडल के ऋषि गृत्समद के पुत्रों के विषय में ऐसा लिखता है—

पुत्रो गृत्समदस्य च सुनको यस्य सौनकः।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च।
एतस्य वंशे संभूता विचित्रा कर्मभिर्द्विजाः॥

अर्थ—गृत्समद का पुत्र सुनक था जिसका पुत्र सौनक हुआ उसके वंश में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों के लोग अपने अपने विचित्र कर्मों के अनुसार हुए।

—○—

८ कुछ ब्राह्मणगोत्र जो क्षत्रियों से उत्पन्न हुए।

इसके अतिरिक्त पुराणों से यह भी जाना जाता है कि बहुत से क्षत्रिय केवल ब्राह्मण ही नहीं हो गये किन्तु बड़े-बड़े ब्राह्मण वंशों अर्थात् गोत्रों के कर्त्ता हुए, जैसे विष्णु-पुराण में काण्वायन अर्थात् कण्व गोत्र की उत्पत्ति के विषय में लिखा है।

बृहत्क्षत्रस्य सुहोत्रः सुहोत्राद्धस्ती य इदम् हस्तिनापुरमारोपयामास। अजमील द्विमील पुरमीलास्त्रयो हस्तिन-

स्तनयाः । अजमीलात् कण्वः कण्वान्मेधातिथि यतः काण्वायनाः द्विजाः ।

विष्णु पुराण ४-१६-१०

अर्थ—वृहत्क्षेत्र का पुत्र सुहोत्र था, सुहोत्र का हस्ती जिसने यह हस्तिनापुर बसाया। हस्ती के अजमील, द्विमील, पुरमील तीन पुत्र हुए। अजमील का कण्व और कण्व का मेधातिथि हुआ, जिससे काण्वायन अर्थात् कण्व गोत्र के ब्राह्मण हुए।

हरिवंश पुराण में भी ऐसा ही (परन्तु कुछ भिन्न) वर्णन है।

पुत्रः प्रतिरथस्यासीत् कण्वः समभवन् नृपः ।
मेधातिथिः सुतो यस्मात् कण्वोऽभवद्द्विजः ॥

अर्थ—प्रतिरथ (या अजमील) का पुत्र कण्व राजा था उसका पुत्र मेधातिथि हुआ जिससे कण्व ब्राह्मण उत्पन्न हुआ।

विष्णु पुराण में गार्ग्य अर्थात् गर्ग गोत्र के ब्राह्मणों की उत्पत्ति क्षत्रियों से इस प्रकार लिखी है—

वृहत्क्षत्र महावीर्य्य नरगर्गाद्या अभवन् मन्यु पुत्राः ।
गर्गाच्छिनिस्ततोगार्ग्याः शैन्या क्षत्रोपेता द्विजातयोवभूवुः ॥

अर्थ—मन्यु के वृहतक्षत्र, महावीर्य्य, नरगर्ग आदि पुत्र हुए। गर्ग से शिनि उत्पन्न हुआ, जिससे गर्ग गोत्र वाले गार्ग्य

अथवा शैन्य ब्राह्मण हुए, जिनकी उत्पत्ति क्षत्रियों से थी। इसकी पुष्टि भागवत पुराण से भी होती है।

गर्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्यः क्षत्राद् ब्रह्मन्यवर्त्तत्

अर्थ—गर्ग से शिनि उससे गार्ग्य अर्थात् क्षत्रियों से ब्राह्मण हुए।

हरिवंश पुराण में मैत्रेय अर्थात् मित्रायु गोत्र वाले ब्राह्मणों के विषय में लिखा है—

दिवो() दासस्य दायादो ब्रह्मर्षिर्मित्रायुर्नृपः।
मैत्रायणस्ततः सोमो मैत्रेयास्तु ततः स्मृताः॥

(हरिवंश अ० ३२)

अर्थ—दिवोदास का दायाद (वारिस) मित्रायु नाम ब्रह्मर्षि राजा था, उससे सोम मैत्रायण हुआ जिससे मैत्रेय गोत्र चला।

मौद्गल्य अर्थात् मुद्गल गोत्र वाले ब्राह्मण भी क्षत्रियों से उत्पन्न हुये—

मुगद्लाच्च मौद्गल्याः क्षत्रोपेताः द्विजातयो बभूवुः।

(विष्णु पुराण अंश ४ अ० २१ श्लोक १६)

() दिवोदास काशी का राजा था जिसका महाभारत के अनुशासन पर्व में वर्णन है।

अर्थ- मुद्गल (अजमील की संतान) से मौद्गल्य हुए सो क्षत्रियों से उत्पन्न हुये ब्राह्मण थे। भागवत पुराण में भी यही लिखा है—

मुद्गलाद् ब्रह्मनिवृत्तं गोत्रं मौद्गल्य संज्ञितम्।

अर्थ—मुद्गल से मौद्गल्य नाम ब्राह्मण वंश उत्पन्न हुआ।

---

९ क्षत्रिय वैश्य और शूद्र जो वैदिक ऋषि बन गये।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि बहुत से लोग जो जन्म से ब्राह्मण न थे वैदिक* ऋषि के पद तक को पहुँच गये कि जिससे बड़ा और अधिक प्रतिष्ठित पद प्राचीन आर्य्यावर्त में कोई न था। हरिवंश पुराण के अनुकूल वैदिक ऋषियों की संख्या ६१ है। उनमें से २५ से अधिक क्षत्रिय वैश्य या शूद्र वंश में उत्पन्न हुये थे, ऐसा सिद्ध है। हमारे पौरा-

---

* जिस ऋषि ने सब से पहिले किसी मन्त्र वा सूक्त के अर्थ देखे और उसका प्रकाश किया वह उसके ऋषि कहलावे। निरुक्तकार कहते हैं—"ऋषियो मन्त्र दृष्टयः मन्त्रान् संप्रादद्:" ऋषि वे हैं जिन्होंने मन्त्र के अर्थ देखे और दिए। सायण ने भी ऋषि शब्द का यही अर्थ लिया है। योरप के विद्वान् जो ऋषि का अर्थ मन्त्र कर्त्ता करते हैं, सो ठीक नहीं।

णिक भाइयों को पुराणों में और सायणाचार्य्य के भाष्य में बहुत श्रद्धा है इसलिये हम इस विषय में उन्हीं का प्रमाण देंगे ।

७ वें अंश में बहुत से ऐसे ऋषियों का वर्णन हो चुका है जो जन्म के ब्राह्मण न थे। उनमें कई वैदिक ऋषि भी थे, जैसे—[१] विश्वामित्र (जो जन्म के क्षत्रिय थे) ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के बहुत से सूक्तों के ऋषि हैं। [२] वशिष्ठ (जो वेश्या पुत्र थे) सातवें मण्डल के ऋषि हैं। [३] कण्व (जो क्षत्रिय वंश के थे) आठवें मण्डल के ऋषि हैं। [४] अजमील और [५] पुरुमील (जो क्षत्रिय राजा हस्ती के पुत्र थे) चौथे मण्डल के ४३ और ४४ सूक्त के ऋषि हैं। सिन्धुद्वीप और [७] देवापि (जो क्षत्रिय थे और जिनका महाभारत में वर्णन है) दसवें मण्डल के ३० से ३४ वें सूक्त तक के ऋषि हैं। [८] कवष (जो दासी पुत्र थे) दसवें मण्डल के ६ और ६८ सूक्त के ऋषि हैं ।

इनके अतिरिक्त और भी कितने ही ऋषि हुये हैं कि जो जन्म से ब्राह्मण न थे। [६] अङ्गिरस नवें मण्डल के ऋषि हैं उनके विषय में विष्णु पुराण में लिखा है कि—

एते क्षत्रप्रसूता वै पुनश्चाङ्गिरसः स्मृताः ।
रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥

अर्थ—ये लोग क्षत्रियों से उत्पन्न हुये थे फिर आङ्गिरस कहलाये। वे रथीतरों में श्रेष्ठ हुए और क्षत्रिय वंशोत्पन्न ब्राह्मण थे।

सायणाचार्य अपने वेद भाष्य में कई और ऋषियों का वर्णन करते हैं, जो जन्म के क्षत्रिय थे। ऋग्वेद के पहले मंडल के १०० वें सूक्त के विषय में लिखते हैं—

तत्रानुक्रम्यते स यो वृषै एकोना वार्षा गिरा ऋज्रा श्वाम्बरीप सहदेव, भयमान सुराधस इति। वृषा गिरो महाराजस्य पुत्रभूताः ऋज्राश्वादयः पंच राजर्षयः सहेदं सूक्तं ददृशुः। अतस्ते अस्य सक्तस्य ऋषयः।

अर्थ—'सयो वृषा, इत्यादि सूक्त की अनुक्रमणिका में लिखा है कि "वृषागिर के पुत्र (१०) ऋज्राश्व, (११) अम्बरीष (१२) सहदेव (१३) भयमान, (१४) और सुराधस इस के ऋषि हैं,,। वृषागिर महाराज के पांच पुत्र ऋज्राश्व आदि राजर्षियों ने मिल कर इस सूक्त को देखा। इस लिये वे इस सूक्त के ऋषि हैं।

ऋग्वेद मं० ४ सूक्त ४२ के विषय में सायण ने लिखा है—

पुरुकुत्सस्य पुत्रस्त्रसदस्यु राजा ऋषिः। अत्रानुक्रमणिका "ममद्विता दशत्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः" ॥

अर्थ—पुरुकुत्स का पुत्र (१५) त्रसदस्यु राजा इस का ऋषि है इसमें अनुक्रमणिका का प्रमाण है कि "ममद्विता आदि दश मन्त्रों का ऋषि पुरुकुत्स का पुत्र त्रसदस्यु है,,।

ऋग्वेद मं० ५ सूक्त २७ के विषय में सायण लिखते हैं—

त्रिवृष्णस्य पुत्रस्त्र्यरुणः पुरुकुत्सस्य पुत्रस्त्रासदस्युः भरतस्य

पुत्रोऽश्वमेध एते त्रयोपि राजानः संभूयास्य सूक्तस्य ऋषयः ।

अर्थ—त्रिवृष्ण का पुत्र (१६) त्र्यरुण, पुरुकुत्स का पुत्र (१५) त्रसद्दस्यु, और भरत का पुत्र (१७) अश्वमेध इन तीनों राजाओं ने मिलकर इस सूक्त को देखा।

नीचे लिखे ऋषि भी जन्म के क्षत्रिय वर्णन किये गये हैं—

(१८) वीतहव्य वा भरद्वाज जो ऋग्वेद म० ६ सूक्त १५ के ऋषि हैं। (१९) सिन्धुक्षित ऋग मं० १० सूक्त ७५ के ऋषि (२०) पीजवन के पुत्र सुदास जो ऋग् मं० १० सूक्त १३३ के ऋषि हैं। (२१) युवनाश्व का पुत्र मानधाता (जो अङ्गिरा के वंश में थे) ऋग् मं० १० सूक्त १३४ के ऋषि हैं। काशिराज दिवोदास* के ३ पुत्र (२२) वसुमान, (२३) शिवि, (२४) प्रतर्दन ऋग् मं० १० सूक्त १७९ के ऋषि हैं। (२५) वेन के पुत्र पृथि ऋग् मं० १० सूक्त १४८ के ऋषि हैं।

मत्स्य पुराण के १३२ अध्याय में तीन क्षत्रिय कुलोत्पन्न और तीन वैश्य कुलोत्पन्न प्रसिद्ध ऋषियों का वर्णन है—

मनुर्वैवस्वतश्चैव इडो राजा पुरूरवाः ।
क्षत्रियाणां वराह्येते विज्ञेया मंत्रवादिनः ॥

---

*कदाचित् ये वही हों जिनका मित्रायु के नाम से हरिवंश पुराण में वर्णन है और जो मैत्रावरुणगोत्र के स्थापक हुये।

भलन्दश्चैव वन्धश्च संकीर्त्तिश्चैव ते त्रयः ।
एते मन्त्रकृतोज्ञेया वैश्यानां प्रवराः सदा ॥

अर्थ—विवस्वत् के पुत्र मनु, इडा, और राजा पुरूरवा ये क्षत्रियों में श्रेष्ठ ऋषि जानने चाहिये । भलन्द, वन्ध और संकीर्त्ति ये तीन सदा वैश्यों में श्रेष्ठ ऋषि जानने चाहिए ।

मत्स्य पुराण इन ऋषियों का वर्णन इस प्रकार समाप्त करता है—

इत्येकनवतिः प्रोक्ताः मन्त्रायैश्च वहिःकृताः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या ऋषिपुत्रान् निबोध तः ॥

अर्थ—इस प्रकार ९१ ऋषि कहे गये हैं, जिन के द्वारा मंत्रों का प्रकाश हुआ, यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य कुलों से थे । इन ऋषि पुत्रों को जानो ।

क्या आनन्द का समय था कि जब अपने अपने गुण, कर्म, स्वभाव, विद्या और आचार के अनुसार हर मनुष्य के लिये उन्नति का मार्ग खुला था, और जातिभेद के वनावटी वन्धन किसी की उन्नति में वाधा नहीं डाल सकते थे । कोई आश्चर्य्य की वात नहीं कि ऐसी दशा में आर्य्यावर्त्त के लोगों ने प्राचीन संसार के सब देशों से अधिक उन्नति प्राप्त की, और मनुष्यमात्र के गुरु और शिक्षक हो गये । परन्तु शोक है कि प्राचीन वर्णव्यवस्था धीरे धीरे विगड़ कर इस जाति-भेद में वदल गई कि जिसके वरावर हानिकारक और नाश-कारक सर हेनरीमेन साहव Sir Henry Maine की सम्मति में और कोई मानुषी प्रथा नहीं हो सकती ।

दूसरा अध्याय ।

जातिभेद की उत्पत्ति और उसकी उत्तरोत्तर वृद्धि

(१) आर्य्यों और अनार्यों का भेद ।

जातिभेद के आरम्भ में केवल आर्य्यों और अनार्य्यों का भेद था। आर्य्य लोगों ने तिब्बत वा मध्य एशिया से आकर इस देश को विजय किया। अनार्य्य लोग इस देश में पहिले से बसे थे। कुछ काल तक दोनों में युद्ध होता रहा। आर्य्यों ने केवल इस देश को विजय ही नहीं किया किन्तु उन्होंने यहाँ एक उच्च सभ्यता और सत्य पवित्र वैदिकधर्म का भी प्रचार किया। यह आवश्यक था कि पहले-पहले वे उन असभ्य जातियों के समाज से अलग रहें कि जिनको उन्होंने विजय किया और जिनको वे उनके अधार्मिक आचरण और जीवन के कारण दस्यु वा दास पुकारते थे।

धर्म और भाषा का भेद, सभ्यता और व्यवहार का भेद, जाति और रंग का भेद आर्य्यों को अनार्य्यों से अलग करता था। केवल विजेता होने के अभिमान से ही नहीं, किन्तु

अपने समाज संस्कृति और अस्तित्व की रक्षा के लिए आर्य्यों को कुछ काल तक अनार्य्यों से अलग रहना पड़ा होगा, जिस से ये अनार्य्यों के बड़े समूह में मिलकर नष्ट न हो जावें। सब से प्राचीन समय में केवल यही आर्य्य और अनार्य्य का भेद पाया जाता है। वेदों में इसका कई जगह वर्णन है, जैसे—

"विजानीह्यार्य्यान् ये च दस्यवो" (ऋग्वेद १।१० ५१)।

अर्थ—आर्य्यों और दस्युओं को जानो।

यद्यपि पहले ही पहले कुछ काल तक आर्य्यों को अनार्य्यों से उन के अनाचार के कारण अलग सा रहना पड़ा, परन्तु अनार्य्यों को सदा के लिये अपने से अलग रखना उन को अभीष्ट न था; ज्यों ज्यों समय चलता गया बहुत से अनार्य्यों ने आर्य्यों की भाषा और उनका आचार ग्रहण कर लिया और वे धीरे-धीरे वैदिकधर्म और सभ्यता में प्रविष्ट होने लगे। वे पहले अधिकतर शूद्रवर्ण हुए।

आधुनिक संस्कृत में शूद्र और दास के अर्थ प्रायः एक ही समझे जाने लगे हैं। परन्तु वैदिक समय में उनके अर्थों में बड़ा भेद था। दस्यु* या दास शब्द उन अनार्यों के लिये आता है जो आर्य्यों से युद्ध करते रहे और जिन्होंने वैदिकधर्म और सभ्यता को अङ्गीकार नहीं किया, और जिनका आचार धर्म विरुद्ध था। शूद्र वे लोग कहलाते थे जो अधिकांश में यद्यपि

*दस्यु और दास दोनों शब्द दस धातु से बने हैं और चोर डाकू हिंसक के अर्थ में आते हैं। दस धातु का अर्थ हिंसा वा नाश करना है।

पहले अनार्य्य थे परन्तु जिन्होंने वैदिकधर्म को ग्रहण कर लिया था और राज नियमों के अनुकूल आचार रखते थे पर जिन के आचार ऐसे भी न थे कि वे द्विजों में शामिल किये जा सकें। शूद्रों में वे लोग भी गिने जाते थे कि जो पहले से आर्य्य थे परन्तु द्विजों के सा आचार न रखने के कारण द्विज पद से पतित कर दिये गये थे। इस प्रकार शूद्र, आर्य्यों और अनार्यों के बीच का एक समूह था। परन्तु दस्यु आर्य्यों के समाज से सर्वथा बाहर और उसके विरोधी थे, और शूद्र लोग समाज के आवश्यक भाग थे। सारे वेदों को देख जाइये। कहीं शूद्रों का वर्णन उस अपमान के साथ नहीं आता जैसा कि दस्यु वा दासों का आता है। कुछ मन्त्र* प्रमाण के लिए दिये जाते हैं।

दस्यु वा दास और वेद।

वधीर्हि दस्युं धनिनं धनेन एकश्चरन्नु पश के भिरिन्द्रा
धनीरधि विषुणक्तेव्यायन्न यज्वानःस नका प्रे तिमीयुः ॥
ऋ० १ । ३३ । ४

अर्थ—हे इन्द्र (राजा वा परमेश्वर), अपने वज्र और

* पं० शिवशंकर काव्यतीर्थ ने अपने अनुपम (पंजाब आर्य प्रतिनिधि-सभा द्वारा प्रकाशित) ग्रन्थ "जातिनिर्णय" में इस विषय पर बड़ी योग्यता से विचार किया है। हमने ये मन्त्र उसी ग्रन्थ से लिए हैं आशा है कि पाठकगण इस ग्रंथ को पढ़ेंगे।

शक्तियों से अकेले फिरते हुये समर्थ दस्यु का नाशकर। यज्ञ न करने वाले, चोर और डाकू तेरे धनुष के ऊपर आते हुए मृत्यु को पावें।

विजानीह्यार्य्यान् ये च दस्यवो वर्हिष्मते। रन्धया शासदव्रतान्। शाकीभव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषुचाकन्॥ ऋ० । १ । ५ । ७

अर्थ—आर्य्यों को और जो दस्यु हैं जानो। धर्म पर चलने वालों के लिए धर्म और नियम रहित दस्युओं का नाश करो अथवा उनको वश में करो और नियम पर चलाओ। हे सर्व शक्तिमान परमेश्वर यज्ञ (अर्थात् वैदिक कर्म) करने वालों का प्रेरक हो। मैं तेरे उन सब नियमों का यज्ञ पालन चाहता हूँ।

वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः। इन्द्रो विश्वस्यदमिताविभीषणो यथा वशं नयति दासमार्य्यः॥ ऋ० ५ । ३४ । ६

अर्थ—अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित युद्ध में निपुण यज्ञ न करने वालों से विमुख, यज्ञ करने वालों का वर्धक, सब संसार का शिक्षक, भयंकर आर्य्य राजा (वा नेता) दासों वा दस्युओं को वश में करता है।

शूद्र और वेद।

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधिः।

रुचं विश्वेषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचोरुचम् ॥ यजु० १८।४८

अर्थ—हमको ब्राह्मणों में रुचि व प्रीति हो, हमारी क्षत्रियों में प्रीति करो, वैश्यों और शूद्रों में प्रीति हो मुझको सबके साथ अत्यन्त प्रीति हो।

प्रियं मां दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते। अथर्व १९।३२।८

हे न्याय कारिन्! मुझको ब्राह्मण शूद्र क्षत्रिय वैश्य का प्रिय बना। जो कुछ मैं कामना करता हूँ वा देखता हूँ सबका प्रिय बना।

इनसे स्पष्ट है कि यदि वैदिक आर्य्य दस्युओं से घृणा करते थे तो उनको जाति के कारण नहीं किंतु उनके धर्म और नियम रहित होने के कारण करते थे। वे शूद्रों से घृणा नहीं करते थे।

ज्यों ज्यों अनार्य्य लोग आर्य्य होते गये और चोर डाकू दस्युओं की संख्या कम होती गई, त्यों त्यों दस्यु शब्द का व्यवहार भी गिरता गया। दास शब्द के वास्तव में वही अर्थ थे जो दस्यु के। परन्तु जैसे जैसे अनार्य्य लोगों की दशा जो दास कहलाते थे सुधरती गई, वैसे वैसे दास शब्द की भी उन्नति होती गई, यहाँ तक कि उसका शूद्र के ही अर्थ में प्रयोग होने लगा, और पीछे से उसका अर्थ सेवक हो गया। दास शब्द की यहाँ तक उन्नति हुई कि उसमें घृणा का भाव बिल्कुल न रहा। जैसा कि पं० शिवशंकर काव्यतीर्थ ने "जाति निर्णय"

में लिखा है, तुलसी दास, सूरदास, जैसे सन्त और भक्त जन भी अपने नाम के साथ उसका प्रयोग करने लगे। इसके विरुद्ध जैसे-जैसे जन्म परक वर्णव्यवस्था वा जातिभेद की जड़ जमती गई, और शूद्रों की सामाजिक दशा विगड़ती गई तैसे-तैसे शूद्र शब्द की भी अधोगति होती गई, क्योंकि अब उसका प्रयोग उस मनुष्य के लिये होने लगा कि जो समाज में नीच समझा जाता है और किसी प्रकार ऊँचा नहीं हो सकता।

ऊपर कहा जा चुका है कि जो अनार्य्य आर्य्य हुए वे पहिले अधिकतर शूद्र हुए। इसका कारण यह था कि अनार्य्य लोगों की दशा उस समय बहुत गिरी हुई थी। परन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि वे सदा शूद्र ही रहते थे। और आगे को कोई उन्नति नहीं कर सकते थे, या यह कि उस समय उनके साथ वह वर्ताव किया जाता था जो पीछे से किया जाने लगा। शूद्र कुल में उत्पन्न हुए बहुत से ऐसे मनुष्यों के दृष्टान्त दिये जा चुके हैं जिन्होंने उच्च से उच्च ऋषि-पद को प्राप्त किया। शूद्रों के साथ द्विजों का विवाह* भी पहले वर्जित न था। और परस्पर विवाह के साथ परस्पर खान पान भी अवश्य होता है। स्मृतियों के समय तक कोई आर्य्य चाहे ब्राह्मण हो या क्षत्रिय, या वैश्य, शूद्र स्त्री के साथ विवाह कर सकता था।

---

*देखो मनुस्मृति ३। १३

शूद्रैव भार्य्या शूद्रस्य सा च स्वा च विशः स्मृते।
तेच स्वाचैव राज्ञश्च ताश्च स्वाचाग्रजन्मनः ॥ १ ॥

शूद्र मनुष्य द्विज वर्ण की स्त्री से विवाह नहीं कर सकता था। यह अनुलोम विवाह का नियम है। इसका कारण कुछ लोग यह बतलाते हैं कि जब आर्य्यों ने इस देश में आकर, और अनार्य्यों पर विजय पाकर यहाँ निवास किया तो उनके साथ पहले स्त्रियाँ कम आई होंगी, जैसा कि युद्ध करने वालों के साथ होता है।

जब जन्म पर वर्णव्यवस्था चल पड़ी तो शूद्रों को विद्या पढ़ना, विशेष कर वेद पढ़ना वर्जित हो गया। आधुनिक स्मृतियों में यहाँ तक वचन मिलते हैं कि यदि शूद्र वेद पढ़े तो उसकी जिह्वा छेदन करादी जाय, यदि वेद सुने तो कान में पिघला हुआ सीसा या लाख डाल दिया जावे। पर वैदिक समय में ऐसा अन्याय नहीं था। इस मन्त्र से अधिक और क्या स्पष्ट होगा—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्य्याय स्वाय चारणाय ॥

यजु० २६। २॥

अर्थ—जैसे मैं इस कल्याण रूपी वेद वाणी को ब्राह्मण

(३२ पृष्ठ के फुटनोट के श्लोक का अर्थ)

अर्थ-शूद्र की भार्य्या शूद्र ही हो; वैश्य की शूद्र या वैश्य; क्षत्रिय की शूद्र, वैश्य या क्षत्रिय; और या ब्राह्मण की शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय; या ब्राह्मण वर्ण की।

क्षत्रिय, शूद्र, वैश्य, सेवक आदि सब मनुष्यों के लिये उपदेश करता हूँ।*

चारों वेदों में आदि से अन्त तक खोज देखो, एक भी ऐसा मन्त्र नहीं मिलेगा जिसमें शूद्रों को वेद पढ़ना वा वैदिक कर्म वर्जित किये गये हों, अथवा उनको अशुद्ध वा छूने के अयोग्य कहा गया हो।

—○—

[२] आर्य्यों में वर्ण भेद।

आर्य्यों, दस्युओं और शूद्रों के भेद का ऊपर वर्णन हो चुका है। द्विज आर्य्यों में कोई जन्मपरक भेद न था। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य गुण कर्मानुसार अलग-अलग व्यवसाय थे, जन्म मूलक न थे। ये वर्णव्यवस्था केवल भारतवर्षीय आर्य्यों ही में न थी। डाक्टर हाग (Dr. Houg) लिखते हैं—"ईरानियों के धर्म पुस्तक ज़न्द अवस्था में चार वर्ण स्पष्टता से पाये जाते हैं, केवल नाम और हैं— (१) अथूवा अर्थात् पुरोहित (संस्कृत "अथर्व्वन्„) (२) रथेस्त अर्थात् योद्धा वा क्षत्रिय, (३) वास्तियोफश्य अर्थात् किसान, (४) हुईती (पहलवी हुतोक्ष) अर्थात् कारीगर" (यस्न १६ । १७ वर्टर्ग)। सरहर्बर्ट रिज़ली मानते हैं कि ये चारों वर्ण ईरान में "केवल व्यवसाय मात्र" थे, जन्मपरक न थे।

---

* महाभारत शान्तिपर्व के श्लोकों का आशय भी ऐसा ही है जो अ० ३ में दिये गये हैं। देखो फ़ुटनोट पृष्ठ ६ पर।

यह भी न समझना चाहिये कि यह वर्ण विभाग केवल भारतवर्ष और ईरान के आर्य्यों में था; किन्तु योरुप के आर्य्यों में भी था। प्राचीन योरुप में भी मनुष्यों के ४ विभाग थे। (१) क्लर्जी Clergy अर्थात् पादरी लोग, (२) बैरोनेज Baronage अर्थात् क्षत्रिय, (३) पीपल people अर्थात् पादरी और योद्धा लोगों को छोड़ कर शेष सब जनता, (४) सर्फ Serf अर्थात् दास वा सेवक ॥

[३] वर्णों का जन्मपरक होकर उनसे अनगिनत जातियों का बनना।

यह एक टेढ़ा प्रश्न है कि इन वर्णों से आर्य्यावर्त्त देश में अनेक जन्मगतः जातियें और उपजातियें क्यों बन गई? और ईरान देश में तथा योरुप में एक-एक देश में एक-एक जाति वा क़ौम (Nation) क्यों बन गई? कुछ ग्रन्थकार इसका कारण यह बतलाते हैं कि योरुप की अपेक्षा आर्य्यावर्त्त में आर्य्यों के आने से पहिले अनार्य्यों की संख्या अधिक थी। शायद यह किसी अंश तक ठीक हो। बहुत समय तक शूद्र कुल में उत्पन्न हुवे मनुष्य भी द्विज बनाये जाते रहे। द्विज आर्य्य शूद्र कुल की स्त्रियों से विवाह भी कर लेते थे। इस प्रकार आर्य्यों और अनार्य्यों का जन्मभेद मिटता जाता था। परन्तु पीछे से द्विज आर्य्यों ने शूद्र कुल की स्त्रियों से विवाह करना बन्द कर दिया। इस का कारण कुछ यह रहा होगा कि आर्य्यकुलों में स्त्रियाँ पहिले की अपेक्षा अधिक और सुलभ हो गईं, कुछ आर्य्यों में उच्च होने का अभिमान और अनार्य्यों

में मिलकर नष्ट हो जाने का भय। इस प्रकार पौराणिक युग में द्विज आर्य्यों और शूद्रों में ऐसा हो गया कि उन में परस्पर का विवाह और उसके साथ ही परस्पर का खान पान जाता रहा।

जब जन्म के ऊपर भेद शुरू होता है तो उस भेद की कोई सीमा नहीं रहती। द्विज और शूद्रों का जन्मभेद होने पर द्विजों में भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अलग-अलग जाति हो गई। ब्राह्मणों का अधिकार बढ़ता गया, क्षत्रियों को अपने बल का अभिमान हुआ, शेष साधारण द्विज अर्थात् वैश्य निस्तेज हो गये। इस प्रकार एक द्विज समाज के तीन भाग हो गये। और फिर एक-एक भाग के बहुत से विभाग होते चले गये। हर एक विभाग अपने को दूसरे से ऊँचा और शुद्ध समझने लगा और उसके साथ विवाह संबन्ध करना अनुचित मानने लगा। देश और आचार और व्यवसाय के भेद से भी बहुत से टुकड़े हो गये। जिससे एक-एक वर्ण में अनगिनत छोटी-छोटी बिरादरियाँ बन गईं, और सामाजिक एकता नष्ट हो गई।

---

[४] जातियों की उत्पत्ति पौराणिक समयमें हुई।

यह ध्यान रखने की बात है कि इन जाति और बिरादरियों की उत्पत्ति पौराणिक समय में हुई कि जब वेद और उपनिषदों का धर्म लुप्तप्राय हो चुका था। श्री रमेशचन्द्र-

दत्त अपनी पुस्तक (Civilization in Ancient India) में लिखते हैं —

"यह कभी न भूलना चाहिये कि जब तक हिन्दू एक जीवित जाति रही, तब तक इस जातिभेद के बुरे परिणाम नहीं निकले थे और न निकल सकते थे। महाभारत के समय में ब्राह्मण और क्षत्रियों को छोड़कर शेष लोग एक वैश्य जाति ही में थे और उसके आजकल की तरह ऐसे छोटे-छोटे टुकड़े नहीं हो गये थे। सब लोगों को धर्मज्ञान, और यज्ञ संस्कार आदि का ऐसा ही अधिकार था जैसा कि ब्राह्मण वा क्षत्रियों को। और कुछ रोक के साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों में परस्पर विवाह भी हो सकता था। इसलिये यद्यपि हमको (महाभारत के समय में) जातिभेद आरम्भ होने का शोक हो, पर इस बात को न भूलना चाहिये कि इस भेद के बहुत बुरे परिणाम, जैसे ब्राह्मणों के अतिरिक्त और लोगों का विद्याध्ययन छोड़ बैठना, सामाजिक एकता का नाश; और बिरादरियों में खानपान और विवाह का वर्जित होना इत्यादि पौराणिक समय से पूर्व कोई जानता भी न था"।

(पृ० १६७-१६८)

सर हरबर्ट रिज्ली भी स्वीकार करते हैं कि-"स्मृतियों में वर्णभेद का जो वर्णन है उसको देखने से प्रतीत होता है कि उस समय आजकल का सा कठिन भेद नहीं था। उस में बहुत नर्मी थी। अनुलोम विवाह के नियमानुसार कुछ रोक के साथ आपस में विवाह हो सकते थे। यह क्रिया, बनते हुए जातिभेद को प्रकट करती है, न कि बने बनायें को।"

(The peoples of Indja P. 252)

नई जातियां अब भी बन रही हैं

सर हरबर्ट रिज़ली फिर लिखते हैं—"नई जातियों के बनने का अभी अन्त नहीं हुआ है। नई बिरादरियां अब भी प्रतिदिन बन रही हैं, और जहाँ कहीं हम उनकी उत्पत्ति खोजते हैं वहां २ नई जातियाँ प्रचलित रीति के अनुसार बनती हुई प्रतीत होती हैं। प्रथम आरम्भ इस प्रकार होता है कि कुछ कुटुम्ब जो अपने में सामाजिक श्रेष्ठता का कोई चिन्ह देखते हैं अपनी जाति के दूसरे मनुष्यों को अपनी कन्या नहीं देते परन्तु उनकी कन्याओं को ले लेते हैं।

जाति पांति बनने की क्रिया

कुछ दिनों के बाद जब उनकी संख्या बढ़ जाती है, और उचित विवाह होने के लिये उनमें काफ़ी स्त्रियां हो जाती हैं, तो वे अपना द्वार बन्द कर लेते हैं और केवल अपने ही लोगों में विवाह करते हैं और जिस मुख्य जाति में वे थे, अपने को उसकी एक उच्च शाखा समझने लगते हैं। अन्त में वे मूल जाति के साथ अपना सब सम्बन्ध तोड़ डालते हैं, और अपना मूल सम्बन्ध छिपाने को कोई नया नाम धारण कर लेते हैं और जुदी ही बिरादरी में गिने जाने का दावा करने लगते हैं। बंगाल के शिक्षित पौड़, जातिभेद की इस प्रथम सीढ़ी के उदाहरण रूप हैं। चासी कैवर्त दूसरी सीढ़ी के और महिस्या तीसरी के (The peoples of India P. 252-253 or Census Report India P. 549)

हमारे कुछ सुधारक ऐसा मान लेते हैं कि आजकल सुधार

के विचारों से जातिभेद शीघ्र दूर होता जा रहा है। उनको ऊपर लिखी बातों से बड़ा आश्चर्य होगा। सेन्सस (अर्थात् मनुष्य गणना) रिपोर्ट में जो हाल और हिसाब लिखे हैं उनसे प्रकट होता है कि ऐसा मान लेना बड़ी भूल है। रेल से भी, जो भेद दूर करने का एक साधन गिना जाता है केवल खाने पीने के ही कुछ छोटे २ बन्धन टूट गये हैं, परन्तु उसके साथ ही परस्पर व्यवहार और यात्रा सुगम हो जाने से विवाह सम्बन्धी जातिभेद के कड़े बन्धन और भी अधिक कड़े होते जाते हैं।

हिन्दुस्तान के मुसलमानी मत पर जातिभेद का असर

हिन्दुस्तान में जातिभेद का बल इतना अधिक है कि उसका असर मुसलमानी और ईसाई मत पर भी पड़े बिना नहीं रहा। सर हरबर्ट रिज़ली लिखते हैं कि—"हिन्दुस्थान की हवा में जातिभेद फैला हुआ है। उसका असर मुसलमान पर भी पड़ा है और हिन्दुओं ही की रीति के अनुसार उसका विस्तार हमें बढ़ता हुआ दीखता है। दोनों जातियों में विदेश से आये लोग अधिक सामाजिक मान का दावा करते हैं। दोनों में उच्चता वंशक्रम से आता है। जैसे हिन्दुओं में आर्य्य द्विज ऊँचे हैं, वैसे ही अरबी, ईरानी, अफ़ग़ानी अथवा मुग़ल मुसलमान अपने साधारण सहधर्मियों में ऊँचे हैं। जिस प्रकार परम्परा से चलती हुई हिन्दू रीति के अनुसार उच्च जाति के मनुष्य नीच जाति की स्त्रियों को ब्याह सकते हैं, और इससे उलटी रीति को बहुत बुरा समझते हैं, उसी प्रकार ऊँचे दर्जे के मुसलमानों में सैयद शेख की कन्या को ब्याह

लेता है परन्तु अपनी कन्या शेख़ को नहीं देता। देश के कुछ भागों को छोड़कर कि जहां कुलीन मनुष्य थोड़े हैं और जहां किसी न किसी प्रकार विवाहों का प्रबन्ध करना ही पड़ता है, उच्च वर्ग के विदेशी मुसलमानों और हिन्दुस्तान के मुसलमानों में विवाह दूषित ठहराए जाते है। बंगाल के असली रहने वाले मुसलमानों को जो 'अजलाफ़, या नीच कहलाते हैं, 'अशराफ़, अथवा उच्च वर्ग के मुसलमान बहुत ही तंग हालत में हों तभी अपनी कन्या देते हैं।"

The peoples of India p. 888, or Census of India Report p. 543.

ईसाइयों पर जातिभेद का असर

सर हरबर्ट रिज़्ले लिखते हैं—"जाति भेद का असर ईसाइयों पर भी हुए विना नहीं रहा। हिन्दुस्तान में लगभग हर जगह हिन्दुओं में से बने हुए ईसाई अपनी मूल जाति के अनुसार मंडल बांधने की इच्छा रखते हुए देखे गये हैं। इससे कभी कभी दो मंडल बन जाते हैं। एक उच्च वर्ग का जिनके हाथों का पानी ब्राह्मण पी सकते थे, और दूसरा नीच वर्ग का जिनमें सब नीच जाति के लोग शामिल हो जाते हैं। पश्चिमी घाट पर पुर्तगाल के ईसाई धर्मोपदेशक जानबूझ कर जातिभेद को स्वीकार करते रहे और इसका फल अब तक देखने में आता है। पश्चिमी घाट और समुद्र के बीच के कोंकन देश के रोमन कैथलिक हिन्दू ईसाइयों में नीचे लिखे विभाग हैं—बाम्मण (ब्राह्मण) चारडोस (क्षत्रिय या खत्री), सुद्दिर

शूद्र) रेंडर्स (खजूर का रस खैंचने वाले), गाविड अथवा गवड (नमक बनाने वाले) मड्वाल (धोबी), कुम्हार, और कपरी या सिदी (मजदूर) जिनके मोटे होंठ, ढलते हुए मस्तक और घुंघरवाली डाढ़ी से प्रतीत होता है कि वे उत्तर की ओर के हैं। इन मंडलों में परस्पर विवाह की बिल्कुल मनाई नहीं है, तो भी बहुत कम होते हैं। परन्तु दक्षिण कनारा से ऐसे विवाह उन स्थानों में बढ़ते जाते हैं जहां ब्राह्मणों के अतिरिक्त दूसरे लोग दफ्तरों में, वकीलों में अथवा व्यापारियों में अच्छी स्थिति प्राप्त कर सके हैं। (Manual of South Canara) कोंकनी ईसाइयों में बहुत कम उमर में बाल्य विवाह नहीं होता, पर कन्याएं बारह वर्ष की अवस्था में ही और कभी कभी विशेष आज्ञा से इससे पहिले भी ब्याह दी जाती हैं। विधवा विवाह के लिए यद्यपि कोई मनाई नहीं है, तो भी मूर्त्ति पूजकों में उसका जितना निरादर है उतना ही उन लोगों में भी है।" (The peoples of India P. 79)

जातिभेद की उत्पत्ति और वृद्धि के कारण निम्नलिखित हैं:—

[१] जन्म का भेद

अनार्य जातियों की सामाजिक उन्नति के लिए स्वाभाविक इच्छा

सर हरबर्ट रिज्ली लिखते हैं—किसी अनार्य जाति के मुख्य मनुष्य किसी प्रकार सांसारिक सम्पत्ति पाकर और

स्वतन्त्र ज़मींदार होकर उच्च जाति में दाखिल होने का प्रयत्न करने लगते हैं। वे अपने को राजपूत बतलाते हैं और इसके लिए किसी ब्राह्मण धर्माचार्य को खड़ा करते हैं। वह उनके लिए कल्पित पूर्वज घड़कर जिस जगह में वे जाकर बसते हैं उनकी कोई अद्भुत बात बना लेता है और महान् राजपूत जाति में से किसी नई और अनसुनी विरादरी में उनका होना बतलाने लगता है। (The peoples of India P. 71) इस प्रकार बहुत सी नई नई जातियां अब भी बन रही हैं। उनका उद्देश्य केवल यही है कि वे समाज में ऊँचा दर्जा प्राप्त कर सकें जो कि आधुनिक हिन्दू मत और समाज के अन्याय से शूद्रकुल में पैदा होकर उनको नहीं मिल सकता।

[२] धार्मिक भेद

बड़े दुःख की बात है कि जातिभेद को निर्मूल करने के प्रयत्न से बहुधा उलटी नई जातियां पैदा हो जाती हैं। हमारे सुधारकों को यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिये। वर्तमान समय की बहुत सी विरादरियां पहले धार्मिक पन्थ थे। वे पन्थ किसी न किसी प्रकार से सब मनुष्यों के समान होने का उपदेश करते थे और अपने मंडल में सब जातियों के लोगों का दाखिल करते थे। इसी प्रकार के लोग विश्नोई हैं जो बहुधा संयुक्त प्रान्त के मुरादाबाद, मेरठ और बिजनोर जिलों में रहते हैं। मिस्टर बर्न साहब अपनी संयुक्त प्रान्त और अवध की सन् १६०१ ई० की सेन्सस रिपोर्ट में लिखते हैं कि यह आरम्भ में जम्भाजी नामक एक पुरुष के मत को मानने वाले लोगों का एक पन्थ था, इसमें अनेक जातियों के

और मुख्य करके जाट, बढ़ई कुछ राजपूत और वैश्य जाति के लोग शामिल थे। इस समूह के मूल मनुष्यों को जम्भाजी के साथ खा लेने के कारण जाति वालों ने बाहर कर दिया था और जिन जातियों के लोग इस पन्थ में मिले उन से अब यह एक अलग जाति बन गई है। दूसरा उदाहरण फर्रुखाबाद, बरेली और मिर्जापुर के साध लोगों का है। बर्न साहब लिखते हैं—कि, 'अब इस जाति में नये मनुष्य दाखिल नहीं होते और यह अनोखी बात है कि इस जाति में विवाह हो सकने के लिए कोई विभाग नहीं हैं। विवाह के संबंध में केवल यह प्रतिबन्ध है कि पहिले विवाह की स्मृति जब तक रहती है तब तक दो कुटुम्बियों में विवाह नहीं होता। यह उदाहरण विशेष लक्ष्य में रखने योग्य है क्योंकि जिस समुदाय से यह जाति बनी है उसके मत के अनुसार सब मनुष्यों में जन्म की समानता है। वह अब तक उनमें नष्ट नहीं हुई जैसा कि और दूसरी जातियों में नष्ट हो गई।" (सेन्सस रिपोर्ट सन् १६०१ पृष्ठ २१४)

लिङ्गायत

सर हरबर्ट रिज़ली लिखते हैं कि "हिन्दू समाज के मूल स्वरूप में जाने का ध्यान देने योग्य उदाहरण बम्बई और दक्षिणी हिन्दुस्तान की लिंगायत अथवा विरशैव जाति की वर्तमान स्थिति में मिलता है। इस पन्थ में २६०००० मनुष्य हैं। बारहवीं शताब्दी में इस पन्थ को एक सुधारक ने स्थापित किया था, जिसका उपदेश था कि जो मनुष्य उसकी बतलाई हुई आठ प्रतिज्ञाएँ करें और अपने शरीर पर शिव का

गुन चिन्ह धारण करें, वे सब समान हैं। इस लिंगायत पन्थ में सत्तरहवीं सदी के अन्त में सामाजिक स्थिति के अनुसार भेद पड़ने लगे, जिनको इसके मूल स्थापक ने साफ़ तौर से परित्याग किया था। हाल की मनुष्य गणना में इस सम्प्रदाय में अनेक जातियों के बनने की क्रिया और भी आगे बढ़ गई थी। इस पन्थ के बड़े-बड़े लोगों ने सरकार हिन्द से प्रार्थना की कि मनुष्य गणना के कागज़ों में हम सबको एक ही जाति में दाखिल करने का "अत्यन्त दुःखदायक और हानि कारक हुक्म" बदल दिया जाये और हम लोगों को जैसे कि हम वास्तव में हों, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र लिखा जाय। सेन्सस कमिश्नर ने ठीक लिखा है कि सब मनुष्य जन्म से समान हैं इस सिद्धान्त को हिन्दुस्तान के लोग जैसा बुरा समझते हैं, और अपने-अपने समूह में अलग-अलग रहना चाहते हैं उसका इससे अच्छा उदाहरण मिलना कठिन है" (Census of India Report P. 522)

सरक

सरहरबर्ट रिज़ली ने हिन्दुस्तान के दूसरे भागों में से ऐसे ही उदाहरण दिये हैं। पश्चिमी बंगाल छोटानागपुर और उड़ीसा के सरकों के सम्बन्ध में जो प्राचीन जैनियों में से बचे बचाये हिन्दू रूपधारी लोग हैं वह लिखते हैं "उनका मूल धर्म्म तो रह गया है पर वे भी सर्वव्यापी जातिभेद के प्रभाव से नहीं बच सके। बिरादरी से बाहर विवाह नहीं हो सकते, ऐसे भेद उनमें भी पड़ गये हैं। और अब वे एक साधारण हिन्दूजाति जैसे हो गए हैं। बङ्गाल के पत्वारी

अतीत सन्यासी, जोगी, जती, वैष्णव और नैपाल के बनहरों की भी यही दशा हुई है" (Census of India Report P. P. 522, 523)।

बंगाल के संरकों की बाबत सर ऐच रिज़ली साहब ने जो कहा है, वह जैन और सिक्खों के विषय में भी ठीक-ठीक घटता है, क्योंकि उनमें भी उनके धर्म के अनुसार जातियां नहीं होनी चाहियें, तो भी कितनी ही जातियाँ बन गई हैं।

(३) व्यवसाय भेद—

बहुत सी बिरादरियां धन्धा रोज़गार को लेकर बनी हैं। यद्यपि उनमें से बहुत से लोग उस धन्धे को छोड़ चुके हैं, तो भी हर एक अपने वंश परम्परा के धन्धे का दावा करता है। ऐसी जातियों में अहीर व ग्वाले, चमार अर्थात् चमड़े का काम करने वाले, भंगी और डोम अर्थात् सफाई का काम करने वाले, केवट अथवा मछियारे, कोरी और काछी अर्थात् तरकारी बोने या बेचने वाले, कुम्हार बर्तन बनाने वाले, कहार कन्धा ढोने वाले, पौड़ मछियारे, सुनार सोने की चीज़ बनाने वाले, लुहार लोहे की चीज़ बनाने वाले, बढ़ई लकड़ी की चीज़ बनाने वाले, तेली तेल निकालने वाले और नाई हैं।

[४] स्थानभेदः—

इसके कारण बहुत सी छोटी छोटी जातियाँ बन गई हैं उदाहरण के तौर पर ब्राह्मणों में काश्मीरी, गुजराती, सारस्वत

अर्थात् सरस्वती के पास रहने वाले, कान्यकुब्ज अथवा कनौज के पास में रहने वाले सरयूपारी अथवा सरयूपार रहने वाले हैं।

"सर हरवर्ट रिज़ली लिखते हैं कि जब एक जाति के मनुष्य अपनी असल जगह को बदल कर हिन्दुस्तान के दूसरे भाग में जा बसते हैं तो मूलजाति से अलग होकर दूसरी जाति बन जाने की संभावना होती है। यह फेर-फार इस प्रकार होता है। पहिले असल जाति के लोग समझने लगते हैं कि जो लोग दूसरे देशों में जाकर बस गये हैं वे अवश्य निषिद्ध भोजन खाते होंगे, अन्य देवता की पूजा करते होंगे, और अनजान स्त्रियों के साथ सम्बन्ध रखते होंगे। इसलिये जब वे अपनी जाति की कन्या को ब्याहना चाहते हैं तो कम दर्जे के समझे जाते हैं और अपनी असल जाति में ब्याहने के लिये उन्हें कुछ धन देना पड़ता है। यह खर्च अधिक बढ़ता जाता है, यहाँ तक कि परदेश में रहने वाले लोग आपस में ही विवाह करने लगते हैं और जौनपुरियो, तिरहुतिया, वारेन्द्र और ऐसे ही बहुत से देशों के नाम पर छोटी-छोटी जातियाँ बन जाती हैं। गेट साहब ने लिखा है कि विहार के मनुष्यों के बहुत दिनों तक बंगाल में रहने के कारण अब विहार वालों से उनके विवाह नहीं होते, और कुछ साल हुए, उत्तरी देश के नाइयों को जो बंगाल में जाकर बस गये और ओछे कहलाते हैं, एक छोटी बिरादरी बन गई है, क्योंकि बंगाल के नाई उनके साथ विवाह नहीं करते और उत्तरी देश और विहार के नाई बंगाल में जा बसने के कारण उन्हें ओछा समझते हैं।"
(Census of India Report PP. 526 & 522; Peoples of India P. 87)

[५] रीतिरिवाज का भेदः—

सर हरबर्ट रिज़ली लिखते हैं कि विधवा विवाह न होना और बाल विवाह, ऊँची जातियों में ये दो मुख्य सामाजिक कुरीतियाँ हैं। उनका अनुकरण करके बहुत सी नीच जातियाँ उच्च जाति में आने का प्रयत्न करती हुई देखी गई हैं। उनका पहिला काम यह होता है कि जो लोग वर्जित काम करने वाले हैं; वे उनसे विवाह सम्बन्ध करना बन्द कर देते हैं। और अयोध्या अथवा कन्नोज जैसे किसी बड़े स्थान के नाम पर अच्छा नाम धारण करके एक नई विरादरी बना लेते हैं। इस प्रकार विहार के 'अवधिया' अथवा 'अजुध्या, कुर्मी और संयुक्तप्रान्त के कन्नौजिया कुर्मी विधवा विवाह का निषेध करने में अभिमान समझते हैं, और अपने को किसी क्षत्रिय जाति में गिनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। दक्षिण हिन्दुस्तान में भी ऐसी ही हलचल देखने में आती है। मद्रास में भिक्षावृत्ति करने वाली जातियों में पंडाराम मांस और मद्य और विशेष कर विधवा विवाह का निषेध करके अपने को उच्च जाति में गिनने लगे हैं। कान्ध (कौन्द) जाति की जटायु नाम की शाखा ने जिसकी जुदी जाति बन गई है, अपने में और अपने गिरे हुए भाइयों में भेद प्रकट करने के लिये विधवा विवाह का अनादर करना शुरू कर दिया। मिस्टर दलाल लिखते हैं कि बड़ौदा में ब्राह्मणों की कुछ छोटी जातियों में जैसे तपोधन, व्यास सारस्वत, राजगौड़, भोजक, भगोला और कलीगर जो सब जुदी-जुदी विरादरियां हैं और काठी, मेरठा राजपूत, टोघर और वाढिल जातियों में विधवा विवाह होता है। जिन

जातियों में विधवा विवाह होता है उनमें भी ऊँचे कुलों में ऐसा विवाह नहीं होता, क्योंकि बड़ी उम्र की स्त्रियों का पुनर्विवाह बुरा समझा जाता है। प्रतिष्ठा बढ़ाने के ख्याल से और उच्च लोगों में गिने जाने की इच्छा से लेवा, कुनवी और सेनानी की एक बड़ी शाखा में विधवा विवाह बन्द हो गया। (Census of India Raport Pp. 529 & 530) जन्म के झूठे अभिमान से दूसरी सामाजिक कुरीतियां किस प्रकार बढ़ रही हैं और सामाजिक सुधार किस प्रकार रुक रहा है इसका यह एक अच्छा उदाहरण है। यह कितने बड़े दुःख की बात है कि जब उच्च जाति के शिक्षित हिन्दुओं ने बालविवाह को बन्द करना आरम्भ कर दिया है और विधवा विवाह का प्रचार करने लगे हैं, तब नीच जातियों के कुछ पढ़े-लिखे भाई उच्च स्थान प्राप्त करने की आशा से बिलकुल उलटा ही व्यवहार करते हैं और इस तरह नई बिरादरियां पैदा कर रहे हैं।

पौराणिक काल के धर्म्माचार्यों की स्वार्थता

पौराणिक काल के धर्म्माचार्यों की स्वार्थता भी जातियों की वर्तमान अवस्था का एक कारण है। नीचे लिखे श्लोकों से यह स्पष्ट हो जायगा।

> अविद्यो वा सविद्यो वा ब्राह्मणो मामकी तनुः।
> अद्यापि श्रूयते घोषो द्वारकायाम् पुनः पुनः

अर्थ—कृष्ण भगवान् कहते हैं, "ब्राह्मण शिक्षित हो वा

अशिक्षित, मेरा ही शरीर है" यह शब्द द्वारिका में बार २ अब भी सुनाई पड़ता है।

पतितोऽपि द्विजः श्रेष्ठो न च शूद्रो जितेन्द्रियः।
निर्दुग्धा चापि गौः पूज्या न च दुग्धवती खरी॥

अर्थ—पतित वा भ्रष्ट भी "ब्राह्मण अच्छा है, पर जितेन्द्रिय शूद्र अच्छा नहीं। दूध न देने वाली गाय पूज्य है, पर दूध देने वाली गधी पूज्य नहीं"।

महाभारत और दूसरी पुस्तकों में से हमने जो श्लोक उद्धृत किये हैं, यदि उनके साथ इन श्लोकों का मिलान किया जाय तो समाज की अधोगति का कैसा दुखदायक चित्र हमारे सामने आता है? इन कारणों से और ऐसे २ और कारणों से जातिभेद को सहायता मिलती गई और जाति बन्धन बढ़ते गये, यहां तक कि अब लोग जानबूझ कर इन बन्धनों को धारण करके दासत्व को प्राप्त हो गये।

तीसरा अध्याय।

—⌒•⌒—

जातिभेद से होने वाली हानियाँ।

अब हम जातिभेद की बुराइयों का वर्णन करेंगे। और पहिले इसकी सामाजिक हानियों से प्रारम्भ करेंगे।

१—जातिभेद से अनेक सामाजिक असुविधाऐं होती हैं।

१ खाने पीने में अनुचित प्रतिबन्ध

आजकल के हिन्दू हज़ारों छोटी छोटी जातियों में विभक्त हो गए हैं, और उनमें आपस में ऐसे भेद पड़े हुए हैं कि जो उल्लंघन नहीं किये जा सकते। यह बहुत सी सामाजिक कुरीतियों का कारण है। पहिले तो खाने पीने में बहुत से अनुचित बन्धन उपस्थित हो गए हैं। हर एक बिरादरी अपने बड़प्पन का घमंड रखती है और दूसरों के साथ खाना स्वीकार नहीं करती। कुछ जातियों में तो लोग अपनी जाति के मनुष्य के हाथ का भी भोजन नहीं करते। कान्यकुब्ज ब्राह्मणों

में ऐसी ही रीति है। इससे बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। कोई आश्चर्य की बात नहीं कि यह भेद दिन प्रतिदिन बढ़ता गया और आजकल के हिन्दू बहुत सी छोटी छोटी जातियों में विभक्त होकर केवल अपनी ही बिरादरी के लोगों से बहुधा सहानुभूति रखते हैं।

२ अनमेल विवाह

दूसरे इसके कारण अनमेल विवाह होते हैं। हरएक मुख्य जाति में बहुत सी छोटी छोटी उपजातियां बन गई हैं। जो एक दूसरे के साथ विवाह सम्बन्ध नहीं करतीं, और इसलिए समान वर वा वधू की खोज के लिए बहुत छोटा मैदान रह जाता है। ऐसे प्रतिबन्धों के कारण योग्य वर अथवा कन्या के खोजने में बड़ी कठिनाइयां होती हैं। किसी मनुष्य की पुत्री शिक्षित हो और वह उसके लिये योग्य वर तलाश करना चाहे, तो वह अपनी ही बिरादरी में उसका विवाह कर सकता है, चाहे वर कितना ही अयोग्य क्यों न मिले। इस प्रकार बहुत सी कन्या अयोग्य पति को ब्याह दी जाती हैं, और जातिभेद रूपी राक्षस को शान्त करने के लिए उनका समस्त जीवन नष्ट व दुःखमय हो जाता है।

३ बालविवाह को परोक्ष रीति से उत्तेजना

४ शारीरिक दुर्बलता

योग्य वर मिलने की कठिनाई से बहुत से अच्छे विचार के मनुष्यों को भी अपनी कन्याओं का विवाह छोटी अवस्था

में करना पड़ता है। इस प्रकार बालविवाह को परोक्ष रीति से उत्तेजना मिलती है। दूसरे थोड़ी संख्या की बिरादरी के मनुष्यों को आपस में ही विवाह करना पड़ता है और इससे स्वाभाविक रीति से शारीरिक दुर्बलता होती है। इस प्रकार एक ही बिरादरी में विवाह होने से परोक्ष रीति से यह दूसरी हानि होती है। परन्तु ऊपर लिखित हानियां बहुत छोटी प्रतीत होती हैं, जबकि हम उनका जातिभेद से होने वाली अधिक गम्भीर हानियों से मुकाबला करते हैं। इनका वर्णन अब आगे किया जाता है।

२—इससे व्यापार और शिल्प व दस्तकारी को हानि पहुँचती है।

वैश्य वर्ण का छिन्न भिन्न होना

जब जातिभेद प्रथम शुरू हुआ तब वह बहुत साधारण था यद्यपि उस समय भी प्रजा में ऐक्य नहीं रहा था, पर चार जातियां से अधिक विभाग नहीं थे। धर्म्माचार्य्य (ब्राह्मण), योद्धा (क्षत्रिय) ये दो जुदी जाति हो गईं थीं। और शूद्रों का एक जुदा ही समूह था। पर साधारण प्रजामंडल में अब तक एकता थी, और वे सब वैश्य या विश* कहलाते थे। खेती बारी, लगभग सब व्यापार और शिल्प दस्तकारी व धन्धे अब तक उनके हाथों में थे। वे प्रजा के एक मान्य समुदाय गिने जाते थे। वे जो व्यापार और शिल्प व दस्तकारी करते थे लोग

*वैश्य या विश के अर्थ प्रजा People के हैं।

उनसे कुछ घृणा नहीं करते थे। परन्तु ज्यों-ज्यों जातिभेद बढ़ता गया, त्यों-त्यों अधिक कठिनाइयाँ पैदा होती गईं। टुकड़े होने की क्रिया एक बार शुरू होकर फिर रुकी नहीं। हर एक व्यवसाय या धन्धा वाले को एक जुदी जाति बनाने की धुन थी और जब वे एक बार वैश्य जाति से जुदा हो गये, तो पृथक् होकर वे शूद्रों की पंक्ति में पड़ गये। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, बहुत से व्यवसाय या धन्धे मुख्य वैश्य जाति से निकल गये, और कुछ समय के बाद वे धन्धे और काम द्विजों के लिये अयोग्य समझे जाने लगे। इस प्रकार सुनार, लुहार, बढ़ई, जुलाहा, राज, तेली चमार आदि अनेक जुदी-जुदी जातियाँ बन गईं। उच्च ब्राह्मण और क्षत्रिय इन जातियों को शूद्र समझते थे और इनसे घृणा करते थे। यह बात स्मृतियों से स्पष्ट प्रगट होती है। स्मृतियाँ सब प्राचीन ऋषियों की बनाई हुई कही जाती हैं, परन्तु वास्तव में ये अधिकतया पौराणिक काल में रची गई हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति (अ० १ श्लोक १६० से १६५ तक) में बहुत से व्यवसाय नीच कह कर दूषित ठहराये गये हैं, और लिखा है कि इन लोगों का पकाया हुआ भोजन छूना भी न चाहिये। श्री युत रमेशचन्द्रदत्त अपने "प्राचीन भारत इतिहास" में लिखते हैं, "हिन्दुओं के इतिहास लिखने वालों को यह जानकर बड़ा दुःख होता है कि इन श्लोकों में सब शिल्प, व्यापार और धन्धों को व्यभिचार और पाप के बराबर कर दिया है। कंजूस, कैदी, चोर, हिजड़ा, नट, चमड़े का काम करने वाला (वैन) शापित हुआ मनुष्य, वेश्या, भेद समझे बिना पढ़ाने वाला, चिकित्सक, रोगी, बुरे स्वभाव वाला, व्यभिचारिणी स्त्री, शराबी, लालची, घातकी और अत्याचारी

मनुष्य, जाति से बाहर निकाला हुआ मनुष्य, व्रात्य, दम्भी लोग, अभक्ष्य खाने वाला, अरक्षित स्त्री, सुनार, स्त्री के वश में रहने वाला मनुष्य, अविचारी पुरोहित, हथियार बेचने वाला, लुहार, जुलाहा, कुत्ते का खाने वाला, घातकी मनुष्य, राजकर्मचारी, रंगने वाला, कृतघ्नीमनुष्य, जीवहिंसक, धोबी, कलाल, चुगलखोर, झूंठा, तेली, खुशामदी और सोम बेचने वाला, ये सब एक ही सूची में गिनाये गये हैं। इन घृणित धन्धों की सूची में कितने अच्छे व्यवसाय रख दिये गये हैं?" (R.C. Dutt Givilization in ancient India pp, 680 & 681)

ऐसे श्लोक मनुस्मृति में भी मिलते हैं। वर्त्तमान मनुस्मृति जिस महर्षि की बनाई हुई कहलाती है, उसकी बनाई हुई नहीं है। यह हम पहिले ही लिख चुके हैं। दत्त महाशय ने बहुत से ऐसे श्लोकों का हवाला दिया है, (मनु अध्याय ३, श्लोक १५२, १५५, १६०, १६२, १६३ और १६६, अ० ४ श्लोक ८४, २१०, २१२, २१५, २१९ और २१६, और अ० १० श्लोक ८४) जिनमें बहुत से उपयोगी काम अपवित्र कह कर घृणित ठहराये गए हैं। इसके बाद वह कैसी उचित आलोचना करते हैं:—"यह एक बड़ी सूची है। यदि हम चिकित्सक, गवैया, दूकानदार, नट, जानवरों को सिखाने वाले, पक्षियों को पकड़ने वाले, हथियार चलाना सिखाने वाले, शिल्पी, तेली, बढ़ई, धोबी, शिकारी, सुनार, लुहार, हथियार और टोकरियां बनाने वाले, सब कारीगर, सब गड़रिये और सब कृषकों को अलग करदें, तो प्रजा में कौन सम्मान का पात्र रह जायगा? केवल पुरोहित और योद्धा"!

हिन्दुस्तान के शिल्प और व्यापार पर इस हानि का एक परिणाम

दूसरी जगह दत्त महदोय लिखते हैं, "जहाँ हथियार बेचने वाले, सुनार, लुहार जुलाहे और रंगरेज़, धोबी और तेली, अपवित्र गिने जायें, वहां देश के शिल्प और उद्योग किस प्रकार उन्नति कर सकते हैं" ? (पृष्ठ ६८१)

इसके बाद दत्त महाशय उस भयंकर असर का वर्णन करते हैं जो इस अनुदार और निन्द्य जातिभेद के कारण हिन्दुस्तान के व्यापार और व्यवसायों पर पड़ा। उनका लेख ऐसा युक्त और ऐसी अच्छी भाषा में है कि उसे हम यहाँ विस्तार से उद्धृत करते हैं:—"शिल्प के विषय में जातिभेद का परिणाम बहुत दुःखदायक हुआ। ब्राह्मण और राजाओं के सिवाय दूसरों में प्रतिभा पैदा होनी असम्भव हो गई। सदा मानसिक बन्धन और पराधीनता में रहने वाले मनुष्यों में महत्ता और कीर्ति प्राप्त करने की आकांक्षा ही उत्पन्न नहीं होती। जिन मनुष्यों को मान प्राप्त करना असम्भव था वे मान के योग्य बनने का प्रयत्न ही न करते थे। दूसरे देशों में एक सिनसिनेटस * अपना हल-पाथा छोड़कर राजतंत्र चलाता है और अपनी प्रजा का भाग्य निर्माण कर सकता है

---

* सिनसिनेटस Cincinatus प्राचीन रोम में एक किसान था, जिसको लड़ाई के समय रोम की प्रजा ने राजा बनाया। वह हल छोड़कर शस्त्र धारण करके युद्ध में गया और जय प्राप्त करके फिर अपने घर जाकर खेती करने लगा।

अथवा मज़दूरी करने वाला राबर्टबर्न्स (Robert burns) अपने देश के भावों को ऐसी कविता में प्रकट करता है कि उसके विचार और शब्द हृदय में अग्नि प्रज्वलित कर देते हैं। परन्तु भारतवर्ष के किसानों का नसीब सदा के लिये फूट गया है। वे कभी कड़ी सामाजिक बेड़ियों को तोड़ नहीं सकते। दूसरे देशों में फिडियस (Phidias) अथवा प्रेक्स्टीलीज़, रेफ़ल (Raphail) अथवा माइकल एंजिलो (Michael Angelo) जैसे शिल्पी, चित्रकार अथवा कारीगर अपने बुद्धिबल से देश में उच्च स्थान प्राप्त कर सके पर हिन्दुस्तान में तो ऐसे मान पद का अधिकार केवल ब्राह्मण और क्षत्रियों को ही था। एक कारीगर अथवा शिल्पी को ऐसा पद मिलना असम्भव था। दूसरे देशों में उत्साह वृद्धि और मान पाकर अच्छे कारीगर और यन्त्रकार वाट (Walt) या स्टिविन्सन ×(Stivenson) का दर्जा पा सकते हैं। परन्तु हिन्दुस्तान में तो कारीगर और इन्जिनियर जातिभेद रूपी लोहे की बेड़ियों में जकड़े हुए थे, और वे इन बन्धनों को तोड़ नहीं सकते थे।

प्रतिभा का अधःपतन

"नीची और ओछी जाति में गिने जाने और अनादर के कारण कारीगर और शिल्पी लोग अपने काम में साधारण

× वाट और स्टिविन्सन ने धुएं का एञ्जिन बनाया जिससे रेल चलती है।

चाल से आगे बढ़ ही न सके, और उच्च भावना, तर्क शक्ति, नई कारीगरी अथवा खोज की तरफ उनका कुछ झुकाव न हुआ।"

"हिन्दू कारीगरों ने उड़ीसा और एलोर से तंजोर और रामेश्वर तक सारे देश में मन्दिर और हवेलियां बनाई हैं, जिनके विषय में हम अगले अध्याय में लिखेंगे। इनके बनाने में उन्होंने जो धीरज, उद्योग, छोटी छोटी बातों का लक्ष्य, बुद्धि, और चतुराई दिखाई है, उनकी तुलना पृथ्वी के ऊपर के किसी भी प्राचीन या अर्वाचीन देश के साथ की जा सकती है। परन्तु इन मकानों में महान् कारीगरी की कल्पना अथवा अच्छे शिल्पी की प्रतिभा की कमी दिखाई पड़ती है। उज्जैन के एक ब्राह्मण कवि (कालीदास) ने शकुन्तला जैसा अद्वितीय नाटक तो रचा पर सारे भारतवर्ष में शिल्पियों की बनाई हुई लाखों पत्थर की मूर्तियों में शकुन्तला नाटक जैसी एक भी मूर्ति दृष्टिगोचर नहीं होती।"

"जिस प्रकार ग्रीस और रोम भूमध्यसागर पर राज्य करते थे उस प्रकार भारतवर्ष की स्थिति और सभ्यता को देखकर कह सकते हैं कि यह हिन्द महासागर पर राज्य करता हुआ होना चाहिये था। और हिन्दू व्यापारी चीन से मिश्र तक समुद्र की यात्रा करते होते।"

समुद्र यात्रा के साहस की कमी

समुद्र पार करने में पाप

"पर ब्राह्मण और क्षत्रिय समुद्रयात्रा के हुनर को नीच

समझते थे। सभ्य हिन्दुस्तान पश्चिम के व्यापार के लिये अरब के असभ्य लोगों पर आश्रय रखता था और बौद्ध समय में हिन्दुओं का सुमात्रा, जावा और चीन के साथ जो थोड़ा बहुत समुद्र से आना जाना था (जैसा कि चीनी यात्री फाहयान के लेखों से पता लगता है।) उसको भी लोग शीघ्र भूल गये। समुद्र पार जाना एक बड़ा पाप गिना जाने लगा। इस अपमान के होते हुए भी शिल्पी लोग थोड़ा बहुत प्रयत्न करते आये। हिन्दू सुनारों और जुलाहों और शिल्पियों ने बुद्धिचातुर्य्य, उद्योग शिक्षण में जो कुछ हो सकता था सो सम्पादन किया, पर जो बुद्धि प्राचीन भारतवर्ष के साहित्य और विचारों में देखने में आती है, वह बुद्धि हिन्दुस्तान के उद्योग शिल्प यांत्रिक खोज और उसके सामुद्रिक साहस में दिखाई नहीं पड़ती। Civilization in ancient India P. 560 & 561)

इसके कारण लोगों में दरिद्रता

यदि आर्थिक दृष्टि से देखिये तो इसकी हानियों का विस्तार पूर्वक वर्णन करना व्यर्थ है। शिल्प, उद्योग, व्यापार और खेती ये ही प्रजा के धनवान् होने के साधन हैं। इस विषय में केवल अंग्रेज लोगों का उदाहरण काफ़ी होगा। इङ्गलैण्ड ने अपने विस्तृत व्यापार से ही हिन्दुस्तान का महान् राज्य प्राप्त किया। इङ्गलैण्ड के जहाज़ हर एक समुद्र में यात्रा करते हैं। इङ्गलैण्ड के व्यापारी हर एक देश में मिलते हैं, और अपने उद्योग और हुनर के कारण वह देश सारी दुनिया का कारखाना बना हुआ है।

इसी कारण इङ्गलैण्ड दुनियां के सबसे धनवान देशों में से एक है। पर हिन्दुस्तान में दस्तकारी और शिल्प उच्च जाति के लिये अयोग्य और घृणित समझे जाते हैं। समुद्रयात्रा करने वाले को जाति से बाहर कर दिया जाता है, इसलिये उच्च जाति के लोग विदेश का व्यापार नहीं करते। शिल्प और उद्योग के अभाव में खेतीबारी के ऊपर ही हिन्दुस्तान का अधिक आधार है। पर उसकी भी उन्नति नहीं होती। खेतीबारी अशिक्षित गंवार लोगों के हाथों में होने से वे विज्ञान के अनुसार नये २ आविष्कारों से लाभ नहीं उठा सकते, जिससे कि वे सभ्य देश के कृषकों का मुकाबला कर सकें। जब व्यापार, उद्योग, शिल्प और खेतीबारी का इस प्रकार अनादर किया जाय तो कौन आश्चर्य्य है कि हमारे शिक्षित भाई सरकारी और प्राइवेट नौकरियां ढूंढ़ते हैं, इस प्रकार ऐसे मनुष्यों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती जाती है। और हमारे देश के युवक देश का धन बढ़ाने के स्थान में उसे व्यय करने वाले हो रहे हैं। ऐसा होने से यदि भारतवर्ष इन कृत्रिम बन्धनों के कारण निरुत्साही बनकर महा निर्धन हो गया तो उसमें आश्चर्य्य ही क्या है? जब तक ऐसे जातिबन्धन बने रहेंगे तब तक भारतदेश दुनिया के उद्योगी और व्यापारी देशों में कभी आगे नहीं बढ़ सकता। हम वेद में देखते हैं तो ऐसे उद्योग और शिल्पों का उचित सत्कार पाया जाता है, परन्तु आश्चर्य्य की बात है कि आजकल की हिन्दू रीति के अनुसार उनसे घृणा की जाती है। पण्डित शिवशंकर काव्यतीर्थ ने अपने "जाति-निर्णय" नाम के ग्रन्थ, (देखो पृष्ठ ८३ से १२८ तक) जिसका हवाला

पहिले दिया जा चुका है, बहुत से वेद मंत्र अनेक शिल्प और उद्योगों के विषय में दिये हैं जैसे खेती, कातने का काम, बुनने का काम, कुवां खोदना, कुम्हार का काम, चमड़े का काम, नाई, सुनार और लुहार के काम और इन मन्त्रों से प्रतीत होता है कि वैदिक आर्य्य हर एक व्यवसाय और शिल्प को उच्च गिनते थे।

सब लोग जानते हैं कि खेती वेद में पवित्र मानी गई है। ऋग्वेद मंडल १० अध्याय २६ मं० ५-६ में ऐसे ऋषि की प्रशंसा है जो भेड़ें रखता है और उन की ऊन से कपड़े बनाता है। अथर्ववेद १४-१-१५ में ऐसी देवियां अर्थात् विदुषी-स्त्रियों का वर्णन है कि जो सूत कातकर और कपड़ा बुनकर उस पर गोट लगाती हैं और वेल-बूटे का काम करके और झालर लगाकर उसे एक नवविवाहिता कन्या को देती हैं। अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं, केवल एक मन्त्र लिखा जाता है जिस में सब कारीगरों की प्रशंसा है—

श्रेष्ठं वः पेशो अधिधायि दर्शतं
स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन।
धीरासो हिष्टा कवयो विपश्चितस्तान्
व एना ब्राह्मणा वेदयामसि ॥

अर्थ—हे बुद्धिमान और चतुर कारीगरो, तुम्हारी श्रेष्ठ और सुन्दर कारीगरी सब जगह प्रसिद्ध है। तुम लोग धैर्य्यवान् चतुर और बुद्धिमान् हो। ये ब्राह्मण तुम्हारी प्रशंसा करते हैं।

श्री रमेशचन्द्रदत्त कृत प्राचीन भारत सभ्यता के इतिहास "Civilization in Ancient India" से जो विस्तृत उद्धरण ऊपर दिये गये उनसे स्पष्ट है कि दत्त महोदय का मत है कि सुनार, लुहार, चमार, बढ़ई, राज, धोबी, रंगसाज, तेली आदि सब व्यवसाय वैदिक काल में वैश्य वर्ण के व्यवसायों में शामिल थे, पौराणिक समय में वे नीच और निन्दित माने जाकर इन को करने वाले शूद्र ठहराये गये। कुछ लोग इस बात पर शायद सन्देह करें। उनको तुष्टि के लिये यह लिखना आवश्यक है कि वैदिक समय में प्रजा का बहुत बड़ा भाग वैश्य कहलाता था। वैश्य शब्द ही विश से बना है जिसका अर्थ प्रजा है। उस समय शूद्र केवल वे कहलाते थे जो अनपढ़ होने वा अन्य किसी कारण से केवल द्विजों की साधारण सेवा वा घरेलू चाकरी अथवा छोटे दर्जे की मजदूरी आदि करने के योग्य होते थे, वैदिक वर्ण व्यवस्था के अनुसार ऐसे लोगों की संख्या अल्प ही होती थी और होनी भी चाहिए। ब्राह्मण और क्षत्रियों की संख्या भी अपेक्षतया अल्प ही होती हैं, इस लिये जिन व्यवसायों का ऊपर वर्णन किया गया वे सब व्यापक वर्ण वैश्य ही के अन्तर्गत थे। विश्व शब्द भी जिसके अर्थ "सब" हैं विश् धातु से बना है, जिस से वैश्य शब्द बनता है।

जो वेद मंत्र (ऋग् १०।६०।११) वर्ण व्यवस्था का आधार माना गया है (देखो पृ० ३) उसमें मनुष्य जाति की एक शरीर से उपमा दी गई है, उस उपमा से भी यही भाव निकलता है। उस मंत्र में ब्राह्मणों की उपमा शिर से दी गई है जिसमें मस्तिष्क और सब ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, क्षत्रियों की उपमा

बाहू से दी गई है जो बल का स्थान और कर्मेन्द्रिय हैं। शिर, बाहू और पांवो को छोड़ कर शरीर का मध्य* भाग शेष रह जाता है जिस की उपमा वैश्य से दी गई है, इस भाग में मस्तिष्क व ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के सिवाय शरीर के सब प्रमुख अङ्ग स्थित हैं, अर्थात् दिल, फेफड़े, मेदा, जिगर, आंतें, गुर्दे, जननेन्दिय, मल निष्कासन की इन्द्रिय आदि।

३–जातिभेद से देशीय उन्नति रुकती है।

भारतवर्ष में बड़े आदमियों की कमी

जन्म परक जातिभेद के कारण बुद्धि और धर्म के शिक्षण

---

*पूर्वोक्त वेद मंत्र में "उरु" शब्द के अर्थ जिसकी उपमा वैश्य से दी गई जंघा भी किया जाता है, परन्तु इस मंत्र में उरु का ठीक अर्थ मध्य भाग ही है, इसकी पुष्टि में इससे अधिक मान्य और क्या प्रमाण हो सकता है कि यह मंत्र अथर्ववेद में भी आया है और वहाँ उरु शब्द के स्थान में मध्यम शब्द है और मंत्र इस प्रकार है—

ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद्
बाहू राजन्यः कृतः। मध्यम
तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां
शूद्रो अजायत।

यदि उरु शब्द का अर्थ जंघा किया जाय तो शिर, बाहू, जंघा व पांवों से शरीर पूरा नहीं होता। मध्य भाग जो मुख्य भाग है छूट जाता है।

का लाभ बहुत थोड़े लोगों ने उठाया। इस के कारण शूद्रों को, जो कि प्रजा के बड़े भाग थे, और जिनकी संख्या प्राचीन वैश्य वर्ण के अनेक धन्धे व व्यवसायों को नीच या घृणित बनाये जाने के कारण बहुत अधिक हो गई थी, ऐसी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर ही न मिला। साधारण रीति पर हर मनुष्य को चाहे वह ऊँचे कुल का हो वा नीच कुल का अपने गुणों द्वारा संसार में ऊँचा स्थान प्राप्त करने का अधिकार है। संसार भर के बड़े आदमियों के जीवन-चरित्रों से साफ़ मालूम होता है कि, उच्च कुल में उत्पन्न हुआ मनुष्य ही बड़ा हो सकता है, ऐसा मानना बड़ी भूल है। स्माइल (Smile) साहब ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक (Self help) में लिखा है :—

"बड़े मनुष्य किसी विशेष जाति में नहीं होते

"बड़े विज्ञानवित्, बड़े साहित्यशास्त्री और विद्वान, बड़े विचार और उदारचित्त वाले, किसी विशेष वर्ग वा जाति में उत्पन्न नहीं होते। पाठशाला में पढ़ने वालों में से, कारखानों में काम करने वालों में से, किसानों में से, झोंपड़ों में रहने वाले गरीबों में से और महल में रहने वाले श्रीमानों में से, ऐसे महान् पुरुष समान रीति से पैदा हुए हैं। परमेश्वर के भेजे हुए कुछ बड़े से बड़े आदमी साधारण कुलों से निकले हैं। गरीब से गरीब मनुष्यों ने भी कभी ऊँचे से ऊँचा स्थान पाया है।"

इंगलैंड में नीच कुलों में से हुए महान् पुरुषों के उदाहरण

"उदाहरण के लिये देखिये कि नाइयों में से कैसे-कैसे

बड़े मनुष्य हुए हैं। पादरियों में अति प्रख्यात कवि और उपदेशक जेरे मीटेलर (Jeremytaylor) पहिले नाई था। सर रिचर्ड आर्कराइट (Sir Richard Arkwright) जिस ने रुई धुनने, कातने और बुनने की कलें निकाली हैं, पहिले नाई ही था। अति प्रख्यात चीफ जस्टिस लार्ड टेंडरडन (Lord Tenderden) और प्राकृत दृश्यों का सबसे प्रसिद्ध चित्रकार टर्नर (Turner) भी पहिले नाई था।

शेक्सपियर (Shakespeare) (इङ्गलिस्तान का सबसे बड़ा कवि) कौन था यह कोई ठीक ठीक नहीं जानता, पर वह नीचे दर्जे से आया यह बात निर्विवाद है। उसका बाप कसाई और ढोर चराने वाला था और ऐसा माना जाता है कि शेक्सपियर पहिले ऊन साफ़ कराने का काम किया करता था। स्माइल साहब ने आगे चलकर साधारण लोगों में से उच्च दरजे पर पहुँचे हुए इङ्गलैण्ड के महापुरुषों की एक लंबी सूची दी है। चूंकि हमारे बहुत से पौराणिक वा पुराने विचार के भाइयों का ख्याल है कि मनुष्य अपने वंशपरम्परा के काम में ही उन्नति या प्रसिद्धि प्राप्त कर सकता है; इसलिये स्माइल साहब की दी हुई लम्बी सूची यहाँ उद्धृत करना कुछ अयुक्त न होगा।

राज मजदूर और बढ़इयों में से बड़े पद पर पहुँचे हुए मनुष्य

इन्जीनियर ब्रिण्डली (Brindley), नौका शास्त्री कुक (Cooke) और कवि बर्न्स (burns) मजदूरों में से ऊँचे पद पर

पहुँचे। राज लोग (मकान चिनने वाले) वैन जोनसन (benj-ohnson) का अभिमान कर सकते हैं, जिसने हाथ में करनी और जेब में पुस्तक रखकर लिन्कोलन की सराय में काम किया। इन्जीनियर एडवर्ड्स (Edwards) और टेलफ़ोर्ड (Telford), भूगर्भ शास्त्री ह्यू मिलर (Hugh Miller) ग्रन्थकार, और शिल्प शास्त्री ऐलन कनिंगहम (Allem Cunningham) भी राजों में से ही थे। इनिगोजोन्स (Inigo Gones) नाम का कारीगर, हैरीसन (Harrison) घड़ी बनाने वाला, जौनहन्टर (John Hunter) शारीरिक शास्त्रवेत्ता, चित्रकार रोमनी (Romney) और ओपी (Opie) पूर्व देश की भाषाओं में प्रवीण प्रोफेसर ली (Professor Lee) और शिल्प शास्त्री जौनगिबसन (John Gibson) पहिले बढ़ई थे और फिर प्रसिद्धि को प्राप्त हुये।

जुलाहों में से:—

"गणित शास्त्री सिम्सन (Simson), शिल्प शास्त्री बेकन (Bacon), दोनों मिल्नर (Milner), एडमवाकर (Adam-Walker) और जौन फ़ोस्टर (john Foster), पक्षिवर्ग विद्या जानने वाला विलसन (Wilson), धर्मोपदेशक और यात्री डा० लिविंगस्टोन (Dr.Livingstone) और कवि टेमोहिल (Tamehil) जन्म के जुलाहे थे। महान् नौका सेनाधिपति सरक्लाउड्ज़्ली शोविल (Sir Cloudesley Shovil), विद्युद्वेत्ता स्टरजन (Sturgion), निबंधलेखक सैम्युलड्रयू (Samuel Drew) क्वार्टर्ली रिव्यू का सम्पादक गिफर्ड (Gifford), कवि ब्लूमफील्ड (Bloomfeild),

धर्मोपदेशक विलियम केरी (William Carey),—ये सब पहिले मोची (चमड़े का काम करने वाले) थे और मोरीसन (Morrison) नाम का दूसरा परिश्रमी धर्मोपदेशक जूते के कलबूत बनाने वाला था। कुछ बरसों से बैम्फ़ नगर में पहिले मोची का काम करने वाला टामस एडवर्ड (Thomas Edwards) जीव विज्ञान जानने वाला महान् पुरुष प्रख्यात हुआ है। इसने अपने पेशे से निर्वाह करते हुए फुरसत का समय विज्ञान के अभ्यास में लगाया है। इसने छोटे क्रस्टेसियों की खोज के द्वारा प्राणियों को एक नई योनि मालूम की है, और प्राणि विज्ञान की पुस्तकें लिखने वालों ने इस नये योनि जीव का "प्रानिज़ा एडवर्ड्सी (Praniza Edwardsee)" नाम रखकर इसका नाम अमर कर दिया है।

दरजियों में से:—

"दरज़ी भी विख्याति प्राप्त करने में पीछे नहीं रहे हैं। इतिहासवेत्ता जोनस्टो (Jhon Stow) ने अपने जीवन में कुछ समय तक दरजी का काम किया था। चित्रकार जैकसन (Jackson) अपनी युवावस्था तक कपड़े सीता रहा। वीर सर जोन हाप्सवुड (Sir John Hdwpswood) जिसने पोइटियरस के मैदान में अपनी मरदानगी के जौहर दिखलाये और जिसको सम्राट् तृतीय एडवर्ड ने उसको वीरता के कारण नाइट का पद दिया, बचपन में एक लन्दन के दर्जी के यहाँ उम्मेदवार था। नौका सेनाधिपति हाबसन् (Admiral Hobson) जिसने १७०२ में वीगों में बड़ी बहादुरी का काम किया, पहिले दर्जी ही था। पर युनाइटेड स्टेट अमरीका

का वर्तमान प्रधान (अर्थात् प्रजा से चुना हुआ सम्राट) एँड्रू जानसन् (Andrew Johnson) निस्सन्देह सब दर्जियों में बड़ा है। उसमें असाधारण चरित्र, वीरत्व और बुद्धिवल है। वाशिंगटन में व्याख्यान देते हुये उसने एक बार कहा कि मैंने अपना राजकीय काम एक ऐल्डरमैन के तौर पर शुरू किया था और फिर राजसभा की सब शाखाओं में काम किया। उस समय श्रोताओं में से कोई धीरे से बोल उठा—"पहिले दर्ज़ी थे"। जोनसन् में एक गुण था कि वह टेढ़ी बात को भी अच्छी मान लेता था और उससे लाभ उठाता था। उसने कहा, "कोई भद्र मनुष्य कहता है कि तुम दर्जी थे। मैं इससे कुछ दुःख नहीं मानता, क्योंकि जब मैं दर्जी था, मैंने कपड़ों के ठीक सीने में और अच्छा दर्ज़ी होने में नाम पाया था। मैं अपने ग्राहकों से ठीक वायदा करता था और हमेशा अच्छा काम तय्यार करता था"।

दूसरे नीचे कुलों में से—

कार्डिनल वुल्ज़ी (Cardinol Wolsey) (जो इंगलिस्तान का एक सबसे बड़ा पादरी था) डीफो (Difoe) ऐकैनसाइड (Akenside) और कर्कव्हाइट (Kirke White) कसाई के बेटे थे। बनयन (bunyan) ठठेरा और जोज़फ लैन्कास्टर (Joseph Lancaster) टोकरा बनाने वाला था। धूम्र यन्त्र के आविष्कार में जिन महान् पुरुषों का नाम शामिल है, उनमें न्यूकोमैन वाट (Newcomen watt) और स्टीफेन्सन (Stephenson) के नाम भी हैं। पहिला लुहार था, दूसरा गणित विद्या के औजार बनाने वाला था, और

तीसरा एंजिन में कोयला डालने वाला मजदूर था। खगोल विद्या के उच्च शास्त्र को जिन्होंने बढ़ाया है, उनमें हम पोलैन्ड के भटियारे के बेटे कोपरनिकस (Copernicus) का नाम भी देखते हैं, और कैप्लर (Kepler) का बाप एक जर्मनी का कलाल था। और वह स्वयं भी पहिले रकाबी उठाने वाला था। डी ऐलम्बर्ट (D' Alembert) को एक शीशा जड़ने वाले की औरत ने पैरिस नगर के सेन्ट जोन ली रौंड गिर्जे के जीने पर जाड़ों की रात में पड़ा हुआ पाया था, और उसने ही उसका पालन पोषण किया था। न्यूटन (Newton) ग्रन्थेम के पास के एक छोटे जमींदार का लड़का था और लैप्लेस (Laplace) होन फ्लोर के पास के बोमैन्ट एन आग के एक दरिद्र किसान का लड़का था।

स्माइल साहब आगे चलकर योरुप के दूसरे देशों के ऐसे प्रसिद्ध पुरुषों के उदाहरण देते हैं, जो कि पहिले नीच कुलों में उत्पन्न हुये थे। वह लिखते हैं—

योरुप के दूसरे देशों के उदाहरण—

दूसरे देशों में नीच जाति में से बड़े पद पर पहुँचे हुये आदमियों के उदाहरण इङ्गलैंड की अपेक्षा कुछ कम नहीं हैं। पहिले हम शिल्प शास्त्रियों के विषय में लिखते हैं। क्लाड (Claude) एक मिठाई बेचने वाले का लड़का था। गीफ्स (Geefs) एक भटियारे का, ल्योपाल्ड राबर्ट (Leopold Robert) एक घड़ीसाज का और हैडन (Hayden) एक बढ़ई का पुत्र था। डेगरो (Daguerre) संगीत नाटक शाला में

पड़दे छापने वाला था। पोप सप्तम गिरीगोरी (Gregory VII) का पिता बढ़ई था। पंचम सैक्सटस (Sextus V) पोप का पिता गड़रिया, षष्ठ ऐड्रियन (Adrien VI) पोप का पिता मोरछल फेरने वाला था। ऐसे ही नीच कुलों में उत्पन्न हुओं में धातुवेत्ता है (Hauy) सेन्ट जस्ट के एक जुलाहे का पुत्र मन्त्र शास्त्र में प्रवीण हाट फ्यूली (Haute feuille ओरलियन के एक भटियारे का पुत्र गणित शास्त्री जौजफ फोरियर (Joseph Fourier) ओक्सोरी के एक दर्ज़ी का पुत्र शिल्प शास्त्री ड्यूरैंड (Duirand) पेरिस के एक मोची का पुत्र और जीव विज्ञान जानने वाला जैस्नर (Gesner) जूरिच के एक चमार का पुत्र था। रसायन शास्त्रवेत्ता वैंके-लिन (Vanquelin) कैलवाडास में सेन्ट ऐन्डर्ड हरवीटाट के एक किसान का बेटा था।

ऊपर के उदाहरण से हम क्या सीखते हैं ?

ये उदाहरण पूरे तौर से बतलाते हैं कि नीच जाति के मनुष्य भी उत्साह उद्योग और अभ्यास से उन्नति और प्रसिद्धि प्राप्त कर सकते हैं, और यह बात ठीक नहीं है कि मनुष्य केवल अपने बाप दादा के काम में ही नाम पैदा कर सकता है। हम स्वीकार करते हैं कि वंशपरम्परा का असर अवश्य मनुष्यों पर पड़ता है और कि उच्च कुल में पैदा हुए मनुष्यों को बड़ा दर्ज़ा पाने का अधिक अवसर है। परन्तु हर एक देश के इतिहास से साफ़ प्रकट होता है कि प्रायः बड़े कुल के लोग ऐसे अवसरों को खो देते हैं। भारतवर्ष में विशेष कर ऐसा हुआ कि जातिभेद के कारण उच्च जातियों

को विशेष अधिकार मिलने से उनको उद्योग और परिश्रम करने की उत्तेजना नहीं रही और आलस्य ने घेर लिया, क्योंकि बिना परिश्रम किये भी वे नीच जातियों से श्रेष्ठ माने जाते हैं। इस प्रकार देश की अवनति का मार्ग खुल गया। ब्राह्मणों की वर्तमान अधोगति का मुख्य कारण यही है। जहां उच्च जाति के लोगों ने इस प्रकार अपने जन्म से मिले हुए साधनों को खो दिया वहां जो लोग जन्म और साधन प्राप्त करने में कम भाग्यशाली थे, उन्होंने अवसर आने पर परिश्रम और धीरज से बड़ी उन्नति कर ली। इस विषय में हम स्माइल साहब की पुस्तक में से छोटी जाति से उन्नत स्थान में पहुँचे हुए मनुष्यों की लम्बी सूची देकर काफ़ी लिख चुके हैं। सर आर्थर हैल्प (Sir Arthur Help) ने ठीक लिखा है—"केवल खोज करनेवालों में गरीब और हलकी जाति के मनुष्यों को अलग करके देखो कि यदि ये आदमी न होते तो इङ्गलैंड की क्या अवस्था होती"? स्माइल साहब का कहना ठीक है कि, "इस देश इंगलिस्तान में और दूसरे देशों में नीच जाति में से उद्योग और परिश्रम द्वारा समाज में अधिकार पाने वाले उपयोगी मनुष्यों के इतने अधिक उदाहरण हैं कि इसको कोई आकस्मिक घटना नहीं कह सकता"। यदि भारतवर्ष में ऐसा नहीं तो उसका मुख्य कारण यही जन्मगत जातिभेद है। नहीं तो क्या भारत की भूमि में ऐसी प्रतिकूलता है कि यहाँ नीच कुल में उत्पन्न हुए मनुष्य बड़े हो ही नहीं सकते? हमारे देश के प्राचीन इतिहास से यह शंका व्यर्थ सिद्ध होती है। उस समय में जैसा कि योरुप में हुआ, बहुत से लोग जो उच्च जाति का अभिमान नहीं कर सकते थे अपनी

योग्यता और सदाचार से अचलकीर्ति और मान प्राप्त कर गये ।

नीच जाति में पैदा हुए अर्वाचीन हिन्दुओं की स्थिति

पर आज कल के हिन्दुओं में तो नीच जाति में उत्पन्न हुए मनुष्य का भाग्य हमेशा के लिये फूटा है। वह चाहे कितना ही विद्वान्, सद्गुणी, उद्योगी, बुद्धिमान् क्यों न हो, तो भी जनसमाज में ऊँचा दर्जा नहीं पा सकता। अपने परिश्रम से उच्च स्थान पर पहुँचे हुए योरुप के किसी मनुष्य का विचार करो, उदाहरण के लिये कार्डिनल उल्जि को लो जो एक कसाई का पुत्र होकर भी अपने देश के उच्च से उच्च दर्जे तक पहुँच गया। और फिर अपने मनमें अपने देश की नीच जातियों को अधोगति का चित्र खींचो, तो जान सकोगे कि भारत के गरीब शूद्रों पर कितना बड़ा अन्याय और सामाजिक अत्याचार हो रहा है। यही कारण है कि गत २००० वर्षों में (जिस समय का विश्वास योग्य इतिहास हमें मिलता है) भारत के बड़े पुरुष अधिकतर ब्राह्मण और क्षत्रियों में से हुए हैं।

जातिभेद के कारण शूद्रों में बड़े आदमियों की कमी

शूद्रों की महान् संख्या में इस लम्बे समय में कबीर, दादु, और कुछ अन्य धर्म पन्थियों के सिवाय नामी मनुष्य बहुत ही कम हुए हैं। इन लोगों ने भी जाति के बनावटी बन्धनों को तोड़ डाला था इसलिये प्रसिद्ध हुए। कितने ही विलक्षण बुद्धिमान मनुष्य जो अनुकूल दशा में अपने देश

और धर्म का अधिक कल्याण कर सकते थे साधनों के अभाव से अप्रसिद्ध जीवन व्यतीत करके मर गये। ईश्वर ने जो शक्तियाँ किसी मनुष्य को दी हैं, उनकी उन्नति रोकने की अपेक्षा अधिक अन्याय युक्त, दुष्ट और धर्म विरुद्ध बात और क्या होगी? और मनुष्य की उन्नति में सहायता करने के बदले उसमें विघ्न डालने वाली संस्था से अधिक राक्षसी और हानिकारक संस्था और क्या हो सकती है?

ब्राह्मणों पर जाति का हानिकारक प्रभाव

नीच जाति में पैदा हुए मनुष्यों को इस प्रकार कृत्रिम रीति से बलात् नीचे रक्खा गया और उच्च कुलोत्पन्न ब्राह्मणों ने जन्म से अधिकार प्राप्त करके परिश्रम करना ही छोड़ दिया और आलस्य से नीच दशा में पड़ गये। फिर भारत जैसे विशाल देश में बड़े आदमियों की संख्या इतनी कम हो तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है। इस प्रकार शूद्रों पर अनुचित अन्याय से और ब्राह्मणों के अयुक्त अधिकारों से देश को दोनों ओर से हानि पहुँची।

४-शूद्रों पर सामाजिक अन्याय और हिंदूमत पर उसका प्रभाव

मध्यकाल के हिन्दुस्तान में शूद्रों की स्थिति

शूद्रों पर अब भी जो सामाजिक अन्याय होता है उसका

कुछ अनुमान पाठकों को हो गया होगा। पर यदि हम पौराणिक काल के इतिहास को देखें कि जब जातिभेद अपनी यौवन अवस्था में था, जब उसको धर्म की पवित्रता और राजनियम का सहारा प्राप्त था, तो हम बड़े दुःख से देखते हैं कि शूद्रों को नीच रखने के लिये बड़े अन्यायी और राक्षसी नियम बनाए गये थे। हर एक वर्ण या जाति के लिये अलग ही नियम (कानून) थे। इन नियमों में ब्राह्मणों पर अनुचित नर्मी औ शूद्रों पर अनुचित सख्ती पाई जाती है।

मध्यकाल की स्मृतियों में अनुचित नियम

'जो कोई मनुष्य अपने से उच्च जाति के मनुष्य को मारे तो उसके हाथ पैर कटवा डालने चाहिये, जो कोई किसी उच्च जाति के मनुष्य को गाली दे तो उसकी जीभ कटवा डालनी चाहिये। जो कोई उच्च जाति के मनुष्य को उपदेश करे तो उसके मुंह में गर्म तेल डलवा देना चाहिए"। (विष्णुस्मृति अध्याय ५ श्लोक १६, २३, २४)।

"जो अछूत जाति का कोई मनुष्य द्विज को छूकर* अशुद्ध कर दे तो उसे मार डालना चाहिये"। (वि॰स॰ ५ श्लो॰ १०४)

---

* "सर हर्बर्ट रिजली साहब सेन्सस कमिश्नर ने अपनी रिपोर्ट मर्दुमशुमारी (Census of India Report) के ५४० पृष्ठ पर कुछ ऐसे उदाहरण दिये हैं जिनसे विदित होता है कि शूद्रों की छूत या पास आने से दूषित होने का विचार भारतवर्ष के कुछ भागों में कहाँ तक बढ़ गया है। वे लिखते हैं:—कोचीन की रिपोर्ट के साथ

(शेष ७४ पृष्ठ पर देखिए)

"जो कोई मनुष्य ब्राह्मण को वध करता तो उसे मौत का दंड देकर उसकी सब सम्पति हरण की जाती थी। जो कोई अपनी बराबर की जाति के अथवा नीच जाति के मनुष्य को मारता तो उसे हलका और दूसरे प्रकार का दण्ड दिया जाता था। क्षत्रिय के मारने वाले को १०००), वैश्य के मारने वाले को १००) और शूद्र के मारने वाले को १०) का दण्ड होता था"। (बौद्धायन अ० १ श्लोक १०-१८-१९)।

व्यभिचार के लिये जिस जाति की स्त्री के साथ व्यभिचार किया जाय उसके अनुसार दण्ड मिलता था, याज्ञवल्क्य स्मृति में तो यहाँ तक लिखा है कि नीच जाति की स्त्री के साथ व्यभिचार दण्ड के योग्य ही नहीं! यह कितना बड़ा अन्याय है। (देखो अ० २। २९१ दत्तमहाशय द्वारा उद्धृत)।

ऐसे नियमों से हर एक निष्पक्ष मनुष्य को स्वाभाविक रीति से उचित क्रोध हुए बिना नहीं रह सकता। सौभाग्य से

(७३ वें पृष्ठ का शेष)

जो ऊँची नीची जातियों की सूची लगी है उससे पाया जाता है कि ऊँची जाति के मनुष्यों को नैयर लोग (एक जाति विशेष) छूकर ही अशुद्ध कर सकते हैं, पर कम्मोलन जाति के लोग जिनमें राज, लुहार, बढ़ई और चमड़े का काम करने वाले शामिल हैं २४ फुट के अन्तर से अशुद्ध कर देते हैं, ताड़ी खींचने वाले (इलुवन या टीयन जाति) ३० फुट से और पढ़िया जाति के लिये जो गोमांस खाते हैं छूत की हद ६४ फुट तक है (अर्थात् यदि कोई पढ़िया ६४ फुट के फासले पर भी हो तो ऊँची जाति का मनुष्य अशुद्ध हो जाता है)"।

ऐसे नियम अब माने नहीं जाते पर शूद्रों की दशा अब भी सन्तोषजनक नहीं है।

शूद्रों की वर्तमान स्थिति

अब भी शूद्रों पर सामाजिक अन्याय होता है जैसा हम पहिले लिख चुके हैं (देखो भाग ३)। अब भी उनको अपनी सामाजिक स्थिति सुधारने का साधन बड़ी कठिनता से ही मिलता है। यही नहीं किन्तु आत्मिक तुष्टि और धार्मिक शिक्षा जो धर्म के मुख्य लाभ हैं शूद्रों को नहीं मिलते। वे वेद का अध्ययन नहीं कर सकते न स्वयं यज्ञ आदि धार्मिक क्रिया कर सकते हैं।

जिस समाज में वे पैदा हुए उसमें इस प्रकार अनादर पाकर शूद्र लोग हिन्दू मत को छोड़ने के लिए सदा तैयार रहे कि जिस मत ने उनको सर्व प्रकार की उन्नति से रोका। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। जब कभी इस देश में नया मत फैला अथवा विदेशी धर्म आया तो उन्होंने मत बदल कर अपनी दशा सुधारने का और दीर्घकाल से उनके अनुदार सहधर्मियों ने जिस बन्धन में उन्हें फंसा रक्खा था, उसको तोड़ने का अवसर जाने नहीं दिया।

अन्य मतों का सामना करने में हिन्दू धर्म की दुर्बलता

दत्त महाशय का लेख इस सम्बन्ध में ऐसा उपयुक्त है कि हम उसे सविस्तार यहां उद्धृत करते हैं। हिन्दुस्तान जैसे रीति रिवाज को मानने वाले देश में बौद्ध धर्म का प्रचार इतनी जल्दी क्यों हो गया यह प्रश्न उठा कर वह लिखते हैं—

बौद्ध धर्म के प्रचार के बाबत दत्त की राय

"उपाली और सुनीत जैसे लोगों के वृत्तान्तों से जोकि हम पहिले ही लिख चुके हैं इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट हो जाता है। उपाली नाई था और सुनीत भंगी था, दोनों शूद्र थे। वे चाहे कितने ही गुण सम्पन्न धर्मात्मा अथवा विद्वान् होते, तो भी उनको हिन्दू धर्म में उच्च पद पाने का अधिकार नहीं था। उपाली और सुनीत ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया और वे यश और सम्मान प्राप्त करके धर्माचार्य्य की पदवी तक पहुँच गये। हिन्दू धर्म में यह दुर्बलता है। यह निर्बलता ऐतिहासिक कारणों से उसको दायभाग में मिली है और इसके कारण उसको समय समय पर बड़ी हानि उठानी पड़ी है।

(Civilization in ancient India Volume 2, P. 304)

शूद्रों पर सामाजिक और धार्मिक अन्याय बौद्ध मत के फैलने का मुख्य कारण था

आगे चल कर दत्त महाशय ने हिन्दू जातियों की पृथकता पर कुछ लिखा है—"जब आर्य्य लोग प्रथम इस देश में आए तो उन्होंने अनार्यों को यहाँ बसे हुए पाया और उन पर विजय प्राप्त कर के उन को सभ्यता सिखलाई। पहिले तो इन अधिवासियों के साथ उन्हें बहुत कुछ युद्ध करना पड़ा, पर समय बीतने पर इन में से लाखों लोग अन्त में आर्यों के अधीन हो गए। प्राचीन वर्ण-व्यवस्था वर्त्तमान वंश परम्परा के जातिभेद से बिलकुल भिन्न थी। उस समय बहुत से शूद्र और अनार्य्य

भी केवल ब्राह्मण ही नहीं किन्तु ऋषि तक हो गये, यह आप पहिले देख ही चुके हैं। अंत में वंशानुकूल जातिभेद चला और शूद्रों को हिन्दू समाज में मान नहीं दिया गया। पर जो शूद्र वैदिक धर्म में प्रविष्ट होने के लिये आतुर थे उनकी संख्या बहुत थी। उनमें से बहुत से हर तरह जनसमाज में आदर पाने के योग्य थे उन्होंने अपने विजेताओं (अर्थात् आर्य्यों) की सभ्यता को ग्रहण कर लिया। जहाँ तक उनको सम्भव था आर्यों का धर्म स्वीकार कर लिया, शान्ति से उद्योग और व्यापार में लग गये, धन दौलत प्राप्त करके जागीरदार बन गये और कुछ लोगों ने तो अपने विजेताओं के धर्म सम्बन्धी ज्ञान को भी सम्पादन किया (छान्दोग्य उपनिषद् आ० ४-२)। समय आ गया था कि शूद्रों को हिन्दू धर्म में आदर के साथ प्रविष्ट करके वेद पढ़ने की, हिन्दुओं के संस्कार आदि करने की और हिन्दू पुरोहितों से काम लेने की आज्ञा मिल जाय। यदि इतनी रियायत करदी जाती, तो हिन्दू धर्म सदैव के लिये बलवान् हो जाता और बड़े दुःख और संकट से बच जाता। पर ऐसा होना न था। आर्य्य-जातियों ने उन्हें प्रवेश न देकर निर्दयता से बाहर निकाल दिया। उन्होंने शूद्रों को सब धार्मिक ज्ञान और क्रियाओं से रोक दिया। उन्होंने शूद्रों के के लिये अन्याय युक्त और दया रहित दीवानी और फ़ौजदारी के नियम बनाये। शूद्रों के धनवान् सभ्य और सत्तावान हो जाने पर भी बहुत दिनों तक आर्य्यों ने उनको पतित और दासवत् समझा और उनके साथ बुरा व्यवहार किया। आर्य्यों को इस निर्दयता का फल मिल गया। लाखों विचारवान, सदाचारी और सम्पतिशाली शूद्रों को प्रबल लालसा थी कि

हिन्दुस्तान के धर्मों में कोई उचित पद मिल जावे। अन्त में ऐसा समय भी आया। एक प्रतिष्ठित क्षत्रिय वंश के पुरुष ने अपना राज पद छोड़कर घोषणा की कि जन्म से सच्ची बड़ाई नहीं मिलती किन्तु सद्गुणों से मिलती है। गौतम बुद्ध की ओर हज़ारों मनुष्य आकर उसके साथ हो गये और बौद्धमत जल्दी से हिन्दुस्तान में फैल गया। बुद्ध के बाद बहुत दिनों तक उत्तरी हिन्दुस्तान में मौर्य वंश ने राज्य किया। वे जन्म से क्षत्रिय नहीं थे, और इस लिये जातिभेद अनुयायी उन्हें तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। फिर कौन अचरज की बात है कि महाराज अशोक ने जातिभेद को बिलकुल अलग कर दिया। और उसके स्थान में सद्गुण और सदाचार को मान देकर बौद्ध धर्म्म को स्वीकार किया।

बौद्ध धर्म की अवनति और उसके मुख्य कारण

इस प्रकार बौद्ध धर्म देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैल गया। सदाचार के लक्ष्य से बौद्ध धर्म चाहे कितना ही श्रेष्ठ क्यों न था, पर धर्म के तौर पर उसमें एक कमी थी इस लिये हिन्दुस्तान में उसकी अधोगति हो गई, पहिले तो उसमें हिंदू समाज के जातिभेद और अन्य हानिकारक रीतियों का निषेध मात्र था, इसलिये यह उपदेश सब बुद्धिमान मनुष्यों को अच्छा लगा और बहुत से लोग इसमें शामिल हो गए। परन्तु बाद में यह एक जुदा ही धर्म बन गया और नास्तिकता की शिक्षा देने वाला हो जाने से हिंदू जैसे धर्मनिष्ठ लोगों ने इसे पसंद नहीं किया। अतः जितना समय कि इस धर्म के फैलने में लगा था उससे कम समय में इसका लोप

हो गया और इसकी जगह पौराणिक अथवा आधुनिक हिंदू धर्म फैला जिसमें अनार्यों की वृक्षादि पूजा, बौद्धों की मूर्ति पूजा और वैदिक-यज्ञ संस्कार का एक अनोखा मेल हो गया। बहुत कुछ फेर-फार के साथ हिन्दूधर्म का पुनरुद्धार होने पर शूद्रों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, यह प्रश्न फिर उपस्थित हुआ।

हिन्दू धर्म का पुनः प्रचार जातिभेद और उसकी वृद्धि

ईसवी सम्वत् की आठवीं और दसवीं सदी के बीच शूद्रों के साथ उदार रीत से व्यवहार करने का और उनको सामान्य धर्म और धार्मिक क्रियाओं का लाभ देने का फिर अवसर प्राप्त हुआ, जैसा कि ईसा के जन्म से पहिले, ८ वीं और १० वीं सदी के बीच में मिला था।

"संसार की दूसरी जातियों ने जिनमें जन्म-भेद नहीं था, ऐसे अवसरों को जाने नहीं दिया। प्राचीन ग्रीक और हेलट (दासों) के मिलने से वर्तमान ग्रीक (यूनान) जाति बनी। इङ्गलैण्ड में नार्मन सेक्शन लोगों के साथ मिल-जुल गये। फ्रान्स में फ्रैंक लोग केल्ट जाति के साथ मिलकर एक हो गये। फिर मध्य काल में योरुप के कुलवान् वैरनों के गुलामों के साथ मिलने से योरुप की अर्वाचीन प्रजाएँ बनीं। देशीय और राजकीय भेद सब एक २ करके लोप हो जाते हैं। पर हिन्दुस्तान का जातिभेद दूर नहीं होता"।

शूद्रों को अब भी नीच बना रक्खा

"हिंदुओं ने इस अवसर को भी खो दिया। शूद्र जातियों को वास्तविक हिन्दूधर्म में दाखिल नहीं किया गया और उनको धार्मिक शिक्षा और क्रियाओं से बाहर रक्खा गया। ब्राह्मण पुरोहित उनके धार्मिक संस्कार नहीं कराते थे, इसलिये उन्हें अपनी ही जाति में से पुरोहित नियत करने पड़े।"

वैश्य जाति का छिन्न-भिन्न होना

"इसके अतिरिक्त आर्यों की वैश्य जाति के कायस्थ वैद्य, सोनार, कुम्हार, जुलाहे और दूसरे ऐसे व्यवसायिक विभाग हो गए।

धार्मिक ज्ञान सम्पादन करने का और वेदाध्ययन करने का वैश्यों को प्राचीन काल से अधिकार था। अब वह अधिकार केवल ब्राह्मणों के पास ही रहा। जो धार्मिक क्रियाएँ पहिले वैश्य लोग स्वयं कर लेते थे, उन्हें अब ब्राह्मण लोग कराने लगे।

जातिभेद के पुनः प्रचार का हानि कारक परिणाम

"इस प्रकार दुगना अन्याय हुआ। एक तो प्राचीन वैश्य जाति की शाखाओं को धार्मिक शिक्षा से रोक दिया गया और दूसरे शूद्र जातियों को हिन्दू धर्म के उच्च भाग से बाहर रक्खा गया। इस अन्याय का फल फिर भोगना पड़ा"।

मुहम्मदी मत का प्रचार

अशिक्षित और अरक्षित शूद्र जाति के पांच * करोड़ मनुष्यों ने हिन्दू मत को छोड़ दिया और मुहम्मदी मत को स्वीकार कर लिया। आज भारतरूपी घर फूट का ग्रास हो रहा है।

दत्त महाशय आगे चलकर लिखते हैं कि मुसलमान विजेताओं और राजाओं का मुख्य प्रयोजन धर्म का प्रचार नहीं था किन्तु अपना राज्य स्थापित करके उसका विस्तार करना था। यह सच है कि इतिहास में उनके अत्याचार और अन्याय के अनेक उदाहरण मिलते हैं, तो भी बहुत से शूद्र अपना धर्म छोड़कर मुसलमान इसलिए हुये कि अपना धर्म छोड़ने पर शूद्रों को सामाजिक मान और सुख मिल जाता था। यही कारण है कि शूद्र वर्ग में से ही बहुत से लोग मुसलमान हुए हैं। महाशय दत्त ने एक उदाहरण दिया है जो ध्यान देने के योग्य है। वह लिखते हैं कि "उत्तरी हिन्दुस्तान के सब प्रान्तों की अपेक्षा बङ्गाल में ही आर्यों की आबादी बहुत कम थी, और जो पांच करोड़ हिन्दू मुसलमान हुये हैं, उनमें बङ्गाल के मुसलमान लगभग दो करोड़ हैं, (पृ० ३३४)।

* मुसलमानों की ५ करोड़ संख्या श्रीदत्त महोदय ने सन् १६११ ई० की मनुष्य संख्या के अनुसार लिखी। यह संख्या निरन्तर बढ़ती गई। सन् १६२१ की म० सु० में ७७६७७५४५ थी और १९४? में ६२०५८०६६ पाई गई।

भविष्य में भी ऐसा ही भय है

पर यह भय जिससे हिन्दू धर्म को कई बार भारी हानि उठानी पड़ी, अब जाता रहा है, ऐसा विचार करना बड़ी भूल है। किन्तु यह कहना अत्युक्ति पूर्ण न होगा कि वह भय अब पहिले से दस गुना अधिक है।

वर्तमान स्थिति

अपमानित शूद्रों को अपने धर्म में लेने के लिये और उन्हें उच्चपद देने के लिये मुहम्मदी मत सदैव तैयार रहता है। केवल दस वर्ष बीते मद्रास प्रदेश के शूद्र जाति के सहस्रों शनार* मुसलमानी धर्म में चले गये। क्योंकि ब्राह्मणों ने उन्हें देवालय के अन्दर न जाने दिया, और केवल बाहर से पूजा करने की आज्ञा दी। बौद्ध धर्म हमेशा के लिये हिन्दुस्तान से जाता रहा है, ऐसा समझा जाता था। पर अब वह अपनी जन्मभूमि में फैलने के लिये फिर नया प्रयत्न कर रहा है। हिन्दू धर्म का इन दोनों की अपेक्षा बहुत प्रबल एक विरोधी और उपस्थित हो गया है। ईसाई धर्म को योरुप के सब देशों से सहायता मिलती है। वह पश्चिमी सभ्यता की चमक दमक से और २० वीं सदी के योरुप और अमेरीका के सब साहित्य और तत्वज्ञान से भरपूर है और विशेष करके वह नीच से नीच मनुष्य को भी उच्च से उच्च सामाजिक पंक्ति में बढ़ाने

* शनारों के मुसलमानी धर्म में चले जाने का वर्णन करते हुये, सर हरबर्ट रिजली लिखते हैं—(८३ पृष्ठ का नोट देखो)

की आज्ञा देता है, इसलिये असंख्य अयुक्त बातों से पूर्ण, अन्धाधुन्ध विधियों से युक्त, निकम्मा पौराणिक साहित्य रखने वाले, अनुदार, अन्याययुक्त और स्वाभाविक जातभेद को मानने वाले हिन्दू धर्म को ऊपर कहे हुये गुणों से युक्त ईसाई धर्म के सामने ठहरना बड़ा कठिन है। मुहम्मदी और बौद्ध धर्म की अपेक्षा इसको बल विशेष है।

ईसाई धर्म का मुख्य बल हिन्दू धर्म की दुर्बलता है

हर एक मनुष्य को अपनी उन्नति के लिए प्रयत्न करने की स्वाभाविक इच्छा है, और जब तक हम हर मनुष्य को उसके गुणों के योग्य दर्जा देने के लिये तैयार नहीं होंगे, तब तक जिस प्रकार करोड़ों शूद्र प्राचीन काल में मुसलमान और बौद्ध हो गये इसी प्रकार थोड़े समय में ईसाई हो जावेंगे, ऐसा कहने में कोई भूल नहीं मालूम होती। हिन्दुओ चेतो और अपने नीचवर्ग के देशी भाइयों के साथ उदार और योग्य रीति से व्यवहार करो। अब भी असंख्य शूद्र हिन्दू धर्म में मान के साथ मिलने के लिये आतुर हैं। ये सब उपयोगी

"नीच जाति के हिन्दुओं को सरकारी नौकरी वकालत और दूसरी सांसारिक उन्नति प्राप्त करने का सरल उपाय मुसलमान हो जाना है। हिन्दुस्तान के दूसरे भागों में बसी हुई शूद्र जातियां भी कभी ऐसा ही विचारने लगेंगी।" (The peoples of India Page, 239) इस भविष्य वाणी को झूंठा करना हिन्दू समाज के हाथ में है।

काम धन्धा करने वाले हैं और एक दो जातियों को छोड़ कर (जैसे कि भंगी या चमार) ऐसे काम नहीं करते कि जो घृणा के योग्य हों। वे हर प्रकार से समाज के योग्य सभासद हैं तो भी उनको संसारिक सुख से बाहर रक्खा जाता है। इतना ही नहीं किन्तु उनको धर्म सम्बन्धी ज्ञान से और यथाविधि क्रियाओं से बाहर कर दिया है। ईसाई धर्मोपदेशक हिन्दू धर्म की इस निर्बलता को समझ गये हैं, और वे अपने प्रतिपक्षियों की दुर्बलता से यथा शक्ति लाभ उठाने के लिये सदैव तय्यार रहते हैं। कुछ हमारे भाई इस भ्रान्ति में पड़े हुए हैं कि अब हिन्दुस्तान में ईसाई धर्म का फैलाव रुक गया है। यह बड़ी भारी भूल है। सन् १९०१ ई० की सेन्सस रिपोर्ट से प्रकट है कि हिन्दुस्तान में पिछले ३० वर्षों के भीतर ईसाइयों की संख्या द्विगुणी हो गई, अर्थात् १८७२ ई० में उनकी संख्या १५०६०९८ थी और १९०१ में २९२३२४१ हो गई। (देखो Census of India Report Volume Ist. P. 388)। सन् १९०१ से सन् १९४१ तक ४० वर्ष में भी ईसाइयों की संख्या लगभग दूनी हो गई। सन् १९०१ में २९२३२४१ थी सन् १९४१ में–४७५०००० पाई गई, इन अंकों से उन लोगों की आँखें खुलनी चाहिये जो समझते हैं कि १९०१ के बाद आर्य समाज के धर्म प्रचार के कारण हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन करना बन्द हो गया वास्तव में हिन्दुओं के अपने धर्म को परिवर्तन करने का कारण इतना धार्मिक विचार नहीं जितना कि शूद्र जातियों पर सामाजिक अत्याचार है। ईसाई धर्म के उपदेशक बहुधा उच्च वर्ग के मनुष्यों को ईसाई नहीं बना सकते, इसलिये वे अब नीच वर्ग के मनुष्यों को अपने धर्म

में लाने का प्रयत्न करते रहते हैं। जो लोग अपने आँखों और कानों से काम लेते हैं उनसे छिपा नहीं है कि ईसाई धर्म में उसके स्वाभाविक बल की अपेक्षा हिन्दू धर्म को दुर्बलता के कारण अधिक लोग जाते हैं। जो कोई भी शूद्रों को धार्मिक संतोष और सामाजिक मान के लिये दूसरे धर्म में जाने को कहता है तो वे जैसा कि उन्होंने प्राचीन काल में कई बार किया है अब भी अन्य धर्म स्वीकार कर लेते हैं, इसमें आश्चर्य ही क्या है। सच तो यह है कि इतने शूद्र दूसरे धर्मों में चले गये, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं, किन्तु आश्चर्य की बात यह है. कि इतने सारे अभी तक बचे हैं। समस्त पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं कि जो हिन्दू धर्म की नाईं अपने अनुयाइयों के एक बड़े भाग को नीच गिने और नीच ही बना रक्खे।

दूसरे धर्मों में यह निर्बलता नहीं। बौद्ध धर्म से समानता

"उपाली और सुनीति जैसे दरिद्र से दरिद्र और नीच से नीच बौद्धों के लिये सम्पूर्ण विद्या सम्पादन करके मानसम्मान और धर्माचार्य तक का पद प्राप्त करने का मार्ग खुला था।

ईसाई धर्म में समानता

ग़रीब से ग़रीब ईसाई किसान अथवा मजदूर को नीति के उत्तम उपदेश और अच्छे से अच्छे आश्वासन जो बड़े-बड़े ईसाई राजा महाराजा और सम्राजो को मिल सकते हैं, प्राप्त करने का अधिकार है। दरिद्र से दरिद्र ईसाई को पृथ्वी के सब से बड़े धर्माचार्य द्वारा धार्मिक क्रिया कराने का अधिकार है, और धर्म की दृष्टि में वह सब और ईसाइयों के समान है।

मुसलमानों में समानता

बंगाल के एक कोने में पड़ा हुआ छोटे से छोटा मुसलमान किसान भी अपने को मुसलमान वर्ग का एक अङ्ग समझता है। वह मुहम्मद साहब की कथा और अरब वालों की जय और सभ्यता का अभिमान करता है, नामी मौलवी और मुल्लाओं से जो हिन्दुस्तान के दूर देशों से पूर्व बङ्गाल में आते हैं, उपदेश सुनने का अधिकार रखता है। वह दिन में पांच बार मक्के की ओर मुख करके उसी नमाज़ को पढ़ता है, जो और सब लोगों के लिये बनाई गई है। और यदि उसके पास कुछ रुपया इकट्ठा हो जाता है, तो वह अपनी पवित्र जगह में हज्ज करने को जाता है। मुसलमानों के समाज में उसका स्थान नियत है, और धर्म की दृष्टि में वह तुर्की सुल्तान अथवा मिश्र के खदीव से भी कुछ कम नहीं है।" (Civilization in ancient India Volume 2, P. P. 311 and 312)

कोई कारण भी नहीं दीखता कि हम बेचारे शूद्रों पर क्यों इतने निठुर हों। सैकड़ों वर्ष तक वे हमारे पक्ष में रह कर लड़ते रहे हैं। हमारे सुख में सुख और दुःख में दुःख मानते आये हैं। वे हमारे ही पूर्वजों को अपना पूर्वज मानते हैं। हमारा ही साहित्य उनका साहित्य है। उनके धार्मिक विश्वास और आशाएँ हमारी जैसी हैं। वे साधारण रीति पर उच्च जाति के लोगों से भी अधिक धर्माभिमानी हैं। इसलिये हमें उनके साथ यथोचित व्यवहार रखना चाहिये, नहीं तो शीघ्र ही हिन्दू धर्म के कूंच का डंका बजेगा।

—:o:—

५—ब्राह्मणों के अनुचित अधिकार और उसका उन पर बुरा परिणाम ।

पौराणिक काल में ब्राह्मणों के अनुचित अधिकार

शूद्रों को जन्म से नीच समझना और नीच रखना जैसा अन्याय युक्त है, जन्म के ब्राह्मणों को अनुचित अधिकार देना भी ऐसा ही बुरा हुआ। विशेष कर पौराणिक काल में जैसा कि हम पहिले लिख चुके हैं, हर एक जाति के लिये जुदे ही नियम थे। ब्राह्मण को उसके गुण दोषों का ध्यान रक्खे बिना सबसे बड़ा मान मिलता था और उस पर कोई हाथ नहीं उठा सकता था। उसको मनुष्य हत्या जैसे बड़े अपराध के लिये भी मौत का दण्ड नहीं मिलता था, बड़े से बड़ा दण्ड जो उसको मिल सकता था वह देश निकाला था। विद्या सम्पादन करने का और धार्मिक क्रिया कराने का अधिकार केवल ब्राह्मण ही को था। सौभाग्य से वह दशा अब नहीं रही है। पर इस का जन्म गत ब्राह्मणों के चरित्र पर बहुत बुरा परिणाम पड़ा। वे प्रायः लोभी, लालची, निरुद्यमी और संकुचित मन वाले हो गये।

इसके हानिकारक परिणाम

(यद्यपि सब ऐसे नहीं हैं, अर्थात् उनमें बहुत से अपवाद रूप भी हैं) जैसा कि दत्त महाशय ने लिखा है:—"किसी को एक वस्तु का ऐसा अधिकार देना कि दूसरा कोई उसको

सम्पादन न कर सके उसके लिये उतना ही हानिकारक है जितना उन लोगों के लिये जो उनसे वञ्चित किये जाँय। और ज्ञान सम्पादन करने का ऐसा अधिकार और सब अधिकारों की अपेक्षा बहुत ही बुरा है।"

ब्राह्मणजाति की शोकजनक अवस्था

इस देश के ब्राह्मण एक समय संसार में प्रसिद्ध थे। आज इनकी अधम स्थिति देखकर कितना दुःख होता है। जिन ऋषियों से प्राचीन काल में अनेक विद्याओं का प्रादुर्भाव हुआ और जो सभ्यता के सब से पहिले प्रचारक हुये, अभाग्य वश उनकी सन्तान अब प्रायः शिक्षा रहित हो गई! जिन ऋषियों की की हुई उन्नति के कारण प्राचीन भारतवर्ष सब देशों का मुकुट मणि गिना जाता था उन्हीं की सन्तान अब उन्नति और सुधार की शत्रु हो गई!

जातिभेद शूद्र और ब्राह्मण दोनों के लिए हानिकारक है

जातिभेद से ब्राह्मणों को लाभ हुआ है, यह विचार करना बड़ी भूल है। सत्य तो यह है कि इस भेद से दूसरी जातियों को जितनी हानि पहुँची है लगभग उतना ही ब्राह्मणों को, किन्तु ब्राह्मणों को इससे जितनी हानि हुई, उससे अधिक शूद्रों के सिवाय और किसी को नहीं हुई। हमारे पौराणिक ब्राह्मण भाई इस भ्रान्ति में न पड़ें कि जातिभेद उनके लिये लाभ दायक है। उनको याद रखना चाहिये कि जो लोग उनकी झूठी प्रशंसा करके जातिभेद की पुष्टि करते हैं वे उनके

सच्चे मित्र नहीं हैं, किन्तु उनके हितेच्छु वे हैं जो इस भ्रमे जातिभेद को तोड़ने का यत्न करते हैं।

६—पुरानी कुरीतियों को रखने की प्रबल आतुरता और सुधार करने में भय

जातिभेद से सामाजिक अत्याचार और उसके हानिकारक परिणाम

पिछली हानि से भी बढ़कर हानि इस भेद के कारण यह हुई है कि बिरादरी के भय से हमारे देशवासी कुरीतियों के दूर करने अथवा सुधार करने में डरते हैं। इससे मनुष्य की स्वतन्त्रता नष्ट होकर सामाजिक अत्याचार फैल गया है। जे० एस मिल (J. S. Mill) लिखते हैं:—"जो व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्ति की स्वतन्त्रता का नाश करता है, वह अत्याचार है, चाहे उसका कुछ ही नाम रक्खा जावे"। इस सामाजिक अत्याचार ने लोगों के हृदयों की स्वतन्त्रता को नष्ट करके हिन्दुओं में सुधार असम्भव सा कर दिया है। यदि कोई सुधार के विचार रखने वाला मनुष्य अपनी पुत्री का विवाह बड़ी अवस्था में करना चाहता है, तो उसे बिरादरी से निकाले जाने का भय होता है। हिन्दू विधवाओं की दीन अवस्था देख कर यदि कोई मनुष्य उनके पुनर्विवाह का समर्थन करता है तो उसे बिरादरी से पृथक करने की धमकी दी जाती है। जो कोई उन्नति प्राप्ति की इच्छा से समुद्र पार करके शिक्षा के

के लिये विलायत जाता है उसको भी यही भय दिखाया जाता है। कोई भी धार्मिक सामाजिक अथवा व्यापार सम्बन्धी सुधार ऐसा नहीं जिसमें यह रोक न डालता हो। इस प्रकार जातिभेद हिन्दुस्तान में सब कुरीतियों का दुर्ग और अयुक्त विचारों का कोट बन रहा है। निदान जातिभेद एक हानि-कारक संस्था है, केवल इतना ही नहीं किन्तु जो और हानियां हिन्दू समाज में पैदा हो गई हैं उन सब का यह मूल कारण भी है। आज कल के हिन्दू प्रायः रीति रिवाज के दास और उन्नति के विरोधी हैं, और एक ही अवस्था में रहना चाहते हैं। इन बातों का मुख्य कारण यही जातिभेद है।

—○—

७-धार्मिक दृष्टि से भी जातिभेद हानिकारक है।

केशवचन्द्र सेन की सम्मति

अब तक हमने जातिभेद से जो मुख्यतया सामाजिक हानियां होती हैं उनके विषय में लिखा है। श्री केशवचन्द्रसेन हिन्दुस्तान के युवकों से सम्बोधन करके लिखते हैं:—"थोड़े ही लोग इस बात को सोचते होंगे कि जातिभेद सामाजिक भेद के तौर पर जितना उपद्रवकारक है उससे कहीं अधिक धार्मिक भेद के तौर पर हानि कारक है। अमुक सामाजिक भेद के कारण जातिभेद सचमुच बड़ा ही हानिकारक है। पर जब हम धर्म की दृष्टि से देखते हैं तो यह आत्मा का लांछन, मनुष्य जाति का कलङ्क प्रतीत होता है और हमारे धर्म-विचार उसको धिक्कारने के लिये और उसको समूल नाश करने के

लिये हमको उत्तेजित करते हैं। जातिभेद हिन्दू मूर्त्ति-पूजा की रक्षा के लिये दुर्ग रूप है और ब्राह्मण पुरोहितों का कोट है। मनुष्य जाति के भ्रातृभावरूपी ईश्वरीय नियम का यह जातिभेद ढिठाई से उल्लंघन करता है। यह सांसारिक भेदों को अलंघ्य और ईश्वरीय भेद जैसा बनाता है, और पवित्र ईश्वर के नाम से उसकी सन्तानों में सदा के लिये विरोध और शत्रुता का बीज बोता है। यह एक जाति के मनुष्यों को दूसरों से उच्च पंक्ति में रखकर उनको ही शिक्षा धर्म और सांसारिक उच्चता का सर्वाधिकार देकर इस अन्याय को ईश्वरीय आज्ञा ठहराता है। इतना ही नहीं किन्तु यह उच्च जाति वालों को ईश्वरीय परवाना देता है कि वे अपने अभागे और निस्सहाय भाइयों को पैर के नीचे कुचल कर दुःखमय दास-अवस्था में रक्खें और स्वेच्छानुसार उनके ऊपर अन्याय करें। जातिभेद ब्राह्मणों को ईश्वर का प्रतिनिधि ठहराता है और इतर जनों को पतित और अपवित्र बतला कर उन्हें मनुष्यत्व के अयोग्य और स्वर्ग प्राप्त करने का अनधिकारी ठहराता है"।

८ जातिभेद से राजनैतिक हानियाँ

जातियों में अलग २ रहने का स्वभाव, उसके परिणाम

इस जातिभेद से जो एक बड़ा हानिकारक परिणाम यह निकला है कि परस्पर विवाह सम्बन्ध और सामाजिक व्यव-

हार न रहने ने सामाजिक एकता नष्टभ्रष्ट हो गई। हिन्दू-जाति के असंख्य छोटे-छोटे टुकड़े हो गये और उनका एक दूसरे से बिल्कुल सम्बन्ध जाता रहा। सर हरबर्ट रिज़्ली ने अपनी सेन्सस रिपोर्ट में लिखा है कि "सूची की परताल करने से मालूम हो जायगा कि हिन्दुओं में दो हज़ार तीन सौ अठत्तर २३७८ बिरादरियां हैं। और ४३ मुख्य जातियाँ या कौमें (Races) हैं"। (Census of Indid Report P. 537)। छोटी-से-छोटी बिरादरी भी अपनी जाति की प्रशंसा और अहंकार में ग्रस्त हैं। दूसरी को अपने से बिल्कुल अलग समझती हैं। इसी कारण हिन्दुओं में एक जातीयता या राष्ट्रीयता का भाव नहीं। साधारणतया किसी हिन्दू को अपनी बिरादरी से बाहर के मनुष्य के लिये बहुत कम सहानुभूति होती है। उसका हित, उसकी सहानुभूति उसका स्वदेशाभिमान और उदारता अपनी बिरादरी तक परिमित रहती है। जहाँ ऐसा संकुचित अनुदार जातिभेद हो, वहाँ प्रजा में एकता कैसे हो सकती है? यह बड़ी ही हानिकारक कुरीति है। दत्त महाशय ने ठीक लिखा है:—"हिन्दुस्थान में जातिभेद के कारण बहुत सी हानियाँ हुई हैं पर उसका सबसे बुरा और शोक जनक परिणाम यह हुआ कि जहाँ एकता और समभाव होना चाहिये था वहाँ विरोध और भेद उत्पन्न हो गया। जहाँ प्रजा में बल और जीवन होना चाहिये था वहाँ निर्बलता और मौत का वास है"। (Civiliz ation nt Ancient India P. 684)

हिन्दू मुसलिम समस्या

हिन्दू मुस्लिम समस्या भारतवर्ष के लिए एक बड़ी

विकट समस्या हो गई है। जिसके कारण भारत के सब नेता परेशान हैं। देश के प्रमुख नेता सच्ची देशभक्ति और घोर परिश्रम से ब्रिटिश साम्राज्य के साथ ६० वर्ष से देश को स्वतंत्र करने के लिये लगातार संग्राम और संघर्ष करते रहे हैं। उनके उद्योग और ईश्वर की कृपा से भारत पूर्ण स्वतंत्र तो हो गया है।

परन्तु हिन्दू और मुसलमानों में जो भेद चले आते हैं और कुछ समय से बहुत बढ़ गये हैं वे शासन की उन्नति में बाधक हो रहे हैं। कांग्रेस ने मुसलमानों को संतुष्ट करने के अभिप्राय से उनको सब समुचित अधिकार देने स्वीकार कर लिए परन्तु मुस्लिम लीग और उसके प्रधान कायदे आजम जिन्ना के आग्रह ने भारत के दो विभाग करा ही दिये। देश के हिन्दू, सिक्ख, ईसाई, पारसी आदि सभी जातियों ने मुस्लिम लीग की इस अनुचित मांग का घोर विरोध किया परन्तु सफलता न मिल सकी।

देहली में ९ अप्रैल १९४६ को (Muslim League Ligislators Convention) मुस्लिम लीग के धारा सभाओं के सदस्यों की कौंसिल का जो अधिवेशन हुआ उसमें राजनैतिक समस्या पर जो उस समय बृटिश प्रतिनिधियों व देश के सामने थी, एक रेजोल्यूशन स्वीकृत हुआ। उस रेजोल्यूशन में पाकिस्तान की मांग के लिये नीचे लिखी युक्ति दी गई थी।

The Hindu Dharma has fostered and Maintained for thousands of years a rigid caste

system resulting in the degradation of 60 millions of human beings to the position of untouchables, creation of unnatural barriers between Man and Man, and the super—imposition of social and economical inequalities on a large body of people of this Country, and which threatens to reduce Muslims, Christians and Other minorities to the status of irredeemable helots socially and economically.

अर्थ—हिन्दू धर्म ने हजारों वर्षों से एक ऐसी कट्टर जाति भेद प्रथा को पाल कर रक्खा है जिसके परिणाम रूप ६ करोड़ मनुष्य पतित होकर अछूत के दर्जे को पहुँच गये, मनुष्य और मनुष्य के बीच में अस्वाभाविक दीवार पैदा की गई, देश के बहुत बड़ी संख्या के लोगों पर सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ लादी गईं, और जिससे भय है कि मुसलिम, ईसाई और अन्य अल्पसंख्यक जातियां सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से ऐसी दास दशा में गिर जावेंगी जिससे उनका उद्धार होना असंभव होगा।

इस रिजोल्यूशन में जाति भेद के कारण हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति पर जो भयंकर आक्रमण किया गया है, उसकी कुछ मुसलमान विद्वानों ने भी निन्दा की है। उसके उत्तर में यह लिखना पर्याप्त होगा कि कांग्रेस के कोई नेता वर्तमान जन्म गत जातिभेद की अन्याय पूर्ण कुप्रथा को समर्थन नहीं करते। हिंदू महासभा के

सदस्य भी उसके समर्थक नहीं। कांग्रेस ने अपने केन्द्रीय मंत्रिमंडल में श्री जगजीवनराम जी को जो अ० भा० हरिजन महासभा के प्रधान हैं, स्थान देकर इस बात को स्पष्टतया सिद्ध कर दिया कि उनकी नीति अछूत और दलित जातियों के साथ पूर्णतया न्याययुक्त व्यवहार करने की है। प्रांतीय कांग्रेस मंत्रिमंडलों में भी इसी प्रकार हरिजनों के प्रतिनिधियों को स्थान दिया गया है। उदाहरण के लिये युक्त प्रान्त के मंत्रि-मंडल में श्री गिरधारीलाल एम० ए० हरिजन समुदाय के प्रतिनिधि नियत किये गये हैं।

परन्तु हिंदुओं से पूर्वोक्त प्रस्ताव को आँखें खोलनी चाहिये कि यह जन्मगत जातिभेद उनके माथे पर कैसा भारी कलंक है। और उनके विरोधियों को इसके कारण उनके धर्म और संस्कृति पर आक्रमण करने का और उनकी राजनैतिक उन्नति रोकने का कैसा भयंकर अवसर मिल जाता है। क़ायदे आज़म जिन्ना सदा इस बात को दोहराते रहे कि कांग्रेस केवल एक सवर्ण हिन्दुओं की संस्था है। उन्होंने १३-१२-४६ को लन्दन से अपना पाकिस्तान योजना का जो वक्तव्य अमेरिका के लिये रेडियो द्वारा भेजा, उसके नीचे लिखे शब्द उद्धरण योग्य हैं:-
"One India means slavery for the Muslimes undar the caste Hindu Permanant majority domination. Muslim India will never submit to that" (१५-१२-४६ के 'हिंदुस्तान टाइम्स' से उद्धृत) "एक भारतवर्ष का अर्थ मुसलमानों के वास्ते सवर्ण हिन्दुओं की स्थायी बहु संख्या और प्रभुता के आधीन दासता होगी। मुस्लिम भारत इसके अधीन कभी नहीं होगा।

लन्दन से लौटते हुए मिश्र की राजधानी काहिरा में भी उन्होंने ऊपर लिखे हुए विचार और वाक्यों को दुहराया और मिश्र वालों को यह भय दिखलाया कि यदि पाकिस्तान स्थापित न हुआ तो भारत का हिन्दू साम्राज्य मध्यपूर्व पर (अर्थात् मिश्र, ईरान, ईराक और अरब) में भी अपना जाल फैलायेगा।

यह कहना सत्य नहीं होगा कि जातिभेद को मिटाने का युद्ध समाप्त हो गया। शहरों और नगरों में शिक्षित व समझदार लोग अथवा ऐसे लोग जिन पर आर्य समाज का अथवा महात्मा गांधी की शिक्षा का प्रभाव पड़ा है जातिभेद को निस्संदेह निन्दनीय मानते हैं परन्तु ग्रामों की साधारण जनता का (और भारत में बहुत अधिक संख्या ग्रामों की ही है) व्यवहार शूद्रों और हरिजनों के प्रति अभी तक ऐसा नहीं जैसा होना चाहिये। देश के कुछ भागों में तो उन पर अब भी इस प्रकार के अत्याचार होते हैं जिनको अमानुषिक ही कहना चाहिये। राजपूताने के कुछ स्थानों में वे अपने मकानों में किवाड़ नहीं लगा सकते उनकी स्त्रियाँ एक अधोवस्त्र के सिवाय दूसरा वस्त्र नहीं पहन सकतीं. वे चांदी के आभूषण नहीं पहन सकतीं। वे भोजन में घी का प्रयोग नहीं कर सकते। गढ़वाल में डोला पालकी की समस्या बहुत प्रसिद्धि पा चुकी है। वहाँ के हरिजन जो अपने आपको शिल्पकार या आर्य कहते और लिखाते हैं विवाह के समय अपने वर वधू को डोला या पालकी में बिठाकर नहीं ले जा सकते थे। इस समस्या का हल बहुत झगड़े के पश्चात् आर्य समाज और हरिजन सुधार संघ के संयुक्त उद्योग से अभी हो पाया है।

कांग्रेस मंत्रिमंडल हो जाने से कई प्रान्तों में शूद्रों पर जो सामाजिक अत्याचार होते आये हैं उनमें से बहुतों को दूर करने के लिये कानून बनाये जा रहे हैं। इससे शूद्रों की बहुत सी कठिनाई दूर हो जावेंगी। परन्तु बहुत सी कठिनाइयाँ केवल सामाजिक होने से कानून को पहुँच से बाहर हैं और वे तब तक दूर नहीं हो सकती कि जब तक कि लोगों के हृदय में परिवर्तन न हो। इसके लिये बहुत बड़े परिश्रम और उद्योग की आवश्तकता है।

चौथा अध्याय ।

जातिभेद की हानियों को दूर करने के लिये कुछ विचार ।

यदि यह बात स्वीकार करली जाय कि जातिभेद ने हिन्दुस्तान को बहुत कुछ हानि पहुँचाई है तो प्रश्न उठता है कि इस को दूर करने का व्यावहारिक मार्ग क्या है? यह प्रश्न पूछना तो सहल है, पर इसका जवाब देना बड़ा कठिन है। परन्तु इस पुस्तक में इस महा कठिन बात पर यदि कुछ न लिखा जाय तो बड़ी भारी त्रुटि रहेगी। तो भी हम पाठकों से यह कह देना चाहते हैं, कि यदि हम इस विषय पर लिखते हैं तो यह समझकर कि समस्या कठिन है, और इस आशा से कि सुधारक लोग हमारी इन सम्मतियों पर यथोचित विचार करेंगे।

—::०::—

१—एक दम जातिभेद तोड़ना सम्भव नहीं और उचित भी नहीं

ब्राह्मसमाज के प्रयत्न की निष्फलता

हमारी सम्मति में एक दम जातिभेद को तोड़ डालना सफल न होगा। ब्राह्मसमाज ने ऐसा करना चाहा था पर वह प्रयत्न निष्फल हुआ। इस हानिकारक भेद से सच्ची घृणा रखने वाले कुछ उन्नत विचार ब्राह्मसमाजियों ने जाति-बन्धन को एक दम तोड़ने का उद्योग किया। ऐसा करते हुये वे समझते होंगे कि सुधारकों के ऐसे उदाहरण दिखलाने पर समस्त देश उनका अनुकरण करने लगेगा, और जो बन्धन सहस्त्रों वर्ष से बेड़ी की तरह लोगों को जकड़े हुये हैं, वह तुरन्त टूट जाएँगे। पर जातिभेद के बल को कूतने में उन्होंने भूल की। सारी प्रजा से अनुकरण किये जाने के स्थान में वे लोग अकेले रह गये, और उनका भी एक नया विभाग ऐसा हो गया, जैसी एक नई बिरादरी होती है। इस प्रसंग से शिक्षा मिलती है कि अपने देशीय भाइयों के जातिभेद सम्बन्धी वहमों का एक दम बिल्कुल तिरस्कार करने से उलटी नई जातियाँ बन जावेंगी, और यह हानिकारक प्रथा कम होने के बदले और बढ़ जायगी।

कुछ आर्यसमाजियों के ऐसे विचार

आर्य्यसमाज के कुछ उत्साही सभासदों ने जातिभेद को

एक दम छोड़ने का और उसके सभासदों की एक आर्य्य विरादरी स्थापित करने का विचार प्रस्तुत किया था। पंजाब के आर्य्यसमाजियों का विशेष ध्यान, कुछ समय हुआ इस ओर दौड़ा था और इन विचारों को लेकर आर्य्यभ्रातृसभा स्थापित की गई थी जो अब नहीं हैं। पर आर्य्यसमाज के विचारशील लोगों ने आर्य्यसमाज को हिन्दुओं से अलग करने का विचार पसंद नहीं किया।

जाँति-पाँति तोड़क मन्डल लाहौर का जिसने अन्य प्रकार से पन्जाब में जातिभेद को मिटाने में प्रशंसनीय कार्य किया है, ध्येय भी उसी प्रकार का रहा है और इसलिये वह आर्यसमाज तथा पंजाब के अन्य सुधारकों की अधिक सहानुभूति प्राप्त नहीं कर सका। एक और कारण उसको आर्यसमाज की उचित सहायता न मिलने यह है कि उसने जन्मगत जातिभेद के विरोध करने में वर्ण व्यवस्था को भी कुछ अंश में ले लिया जो जातिभेद से बिलकुल भिन्न है और जिसको सब आर्य समाजी और हिन्दू, वैदिक धर्म का एक प्रमुख सिद्धान्त मानते हैं।

——:०:——

२—जन समूह की शिक्षा और ज्ञान वृद्धि।

इस कठिनाई के दूर करने का एक मार्ग यही है कि जन समूह को इस विषय में ठीक-ठीक विचार करना सिखाया जाये शूद्र को उसके मनुष्यत्व के योग्य स्वाभिमानी होने का

उत्तेजन दिया जाय, और ब्राह्मणों को बतलाया जाय कि उनको केवल जन्म से श्रेष्ठता नहीं मिल सकती, और नीच जाति में उत्पन्न हुआ मनुष्य भी उनका भाई और मान का पात्र है। निदान जातिभेद के हानिकारक परिणामों का लोगों को बोध कराना चाहिए। लोगों के रीति रिवाज बदलने से पहिले उनके विचार बदलने आवश्यक हैं।

आन्तरिक सुधार

हिन्दुस्तान के समस्त भागों में जो भिन्न-भिन्न सुधार समाजें चल रही हैं, उनके द्वारा जन समुदाय में सुधार फैल सकता है, और हिन्दू समाज के आन्तरिक भाग में भी यह सुधार प्रवेश कर सकता है। इस सम्बन्ध में इन समाजों का बड़ा भारी कर्तव्य है। उन में से कुछ समाजों के विषय में हम विशेष रूप से लिखेंगे।

—०—

Arya * Bhaiya ... 1582 ... Bhadoolyea

३—आर्यसमाज का कर्तव्य

हिन्दुओं का पुनरुद्धार करना जिन-जिन समाजों का उद्देश्य है, उनमें आर्य्यसमाज अग्रगण्य है। उसने सब अयुक्त विचार और हानिकारक रीतियों के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया है। वह देश को अर्वाचीन योरुप के स्थान में प्राचीन आर्यवर्त्त के नमूने पर चलाना चाहता है। वह केवल तर्क शक्ति के स्थान में वेदों का आश्रय लेता है, विदेशी विद्वानों के बदले प्राचीन ऋषियों का प्रमाण देता है। इसलिये उसने दूर

तक अपना प्रभाव कर लिया है। उसका प्रकाश हिन्दूसमाज के नीचे भागों में भी पहुँच गया है। उत्तरी हिन्दुस्तान में तो उसके उपदेशकों ने अशिक्षित लोगों में भी जिन में कि पश्चिमी सभ्यता की एक किरण भी नहीं पहुँची और न बहुत दिनों तक उसके पहुँचने की आशा है. वेदों का प्रकाश पहुँचा दिया है। परन्तु यह दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि जो सुधार इस पुस्तक का विषय है, वह सुधार अब तक आर्यसमाज ही में बहुत कम हुआ है।

पंजाब आर्य्यसमाजों द्वारा नीच जातियों की शुद्धि

आर्यसमाज ने उन लोगों को जो लोक दृष्टि में बड़े ही नीच समझे जाते थे, आर्य्यों में लेने का साहस किया है। यह काम बड़ा ही उपयोगी है और इस यश के पात्र विशेषतः पंजाब के आर्य्यसमाज हैं। उन्होंने ओढ़, मेघ, रहटिये आदि जातियों के सहस्रों मनुष्यों की शुद्धि की है। इससे उन लोगों की आर्य्यसमाज में गिनती होने लगी। यह उपयोगी काम तो हो गया परन्तु उनका नाम मात्र शुद्ध करके ही बस नहीं करना चाहिए। उन की नीति और बुद्धि की शिक्षा के लिये भी योग्य प्रबन्ध किया जाना अत्यावश्यक है।

संयुक्तप्रान्त के राजपूत मुसलमानों की शुद्धि

कुछ वर्ष हुए कि संयुक्तप्रान्त के इटावा, कानपुर और दूसरे ज़िलों के सैकड़ों राजपूतों को, जिन के बाप दादों ने कभी मुहम्मदी धर्म अंगीकार कर लिया था, क्षत्रिय महासभा द्वारा शुद्धि की गई और उन को अपनी-अपनी बिरादरी में ले लिया

गया। यह दूसरा बड़ा कार्य है जिस का यश मुख्य कर आर्य्य-समाज को ही है।

इस सुधार कार्य में एक बड़ी कठिनाई यह थी कि आर्य समाजी तथा सुधारकों पर भी विवाह और दायभाग आदि के लिये वही क़ानून वा हिन्दू शास्त्र लागू है जो अन्य सब हिन्दुओं के लिये है। उसके अनुसार यदि भिन्न जातियों वा वर्णों के स्त्री और पुरुष परस्पर विवाह करें तो वह अवैध वा कानून विरुद्ध (Illeagal) माना जाता है। और ऐसे विवाह की सन्तान भी जारज (Illegitimate) समझी जाती है। परन्तु अब सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के उद्योग से सन् १९३९ से आर्य विवाह विधान (Arya Marriage Act) नामक कानून बन चुका जिससे यह कठिनाई दूर हो गई, क्योंकि उसके अनुसार जो मनुष्य व स्त्री आर्य समाजी हों, और अपने आपको आर्य समाजी घोषित करें उनका विवाह वैध वा जायज (Leagal) माना जायगा। परन्तु अत्यन्त खेद का विषय है कि अब तक बहुत कम आर्यों ने उससे लाभ उठाया। आर्य समाजियों में भी बहुत लोग अपनी संतान का जाति के भीतर ही विवाह करते हैं और इस प्रकार इस हानिकारक जातिभेद को दृढ़ करते हैं जिसको दूर करना उनका कर्तव्य है।

ऐसी दशा में इस दोष को निवारण करने के लिये सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अध्यक्षता में एक संस्था जातिभेद निवारक आर्य परिवार संघ के नाम से स्थापित

की गई है जिसका उद्देश्य है कि इस जातिभेद रूपी राक्षस को नष्ट करने के लिए सुसंगठित रूपसे प्रयत्न करें। इस संघ के कार्यालय में विवाह योग्य लड़के और लड़कियों के रजिस्टर रहेंगे और जो लोग अपनी संतान के विवाह अपनी जाति के बाहर करना चाहें उनको योग्य वर और कन्या तालाश करने में सब प्रकार की सुविधाएँ दी जावेंगी। यह संघ युवकों से अनुरोध करेगा कि वे अपना विवाह जात पांत का विचार छोड़कर करें और इस विषय में उनसे लिखित मत पत्र लेने का यत्न करेगा। इस संघ के सभासदों को भी यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि वे अपनी सन्तान का विवाह अपनी जाति से बाहर करेंगे। जो लोग ऐसी प्रतिज्ञा न करते हुये संघ के उद्देश्यों से सहानुभूति करते हों उनका नाम संघ के सहायकों में लिखा जा सकता है। आशा की जाती है कि आर्यसमाजी तथा अन्य सज्जन जो इस सुधार के समर्थक हैं इस उपयोगी संस्था को सहयोग देंगे। बहुत बड़ी संख्या में अन्तर्जातीय विवाहों के उदाहरण होने से ही जातिभेद के दूर होने की आशा की जा सकती है।

—○—

[४] कुछ अन्य सुधार सभाओं के कार्य्य

ब्राह्मसमाज, उसकी अपरिमित व्यवहार नीति की निष्फलता

ब्राह्मसमाज की शक्ति अब कम हो गई है। प्रारम्भ में उसने जातिभेद के विरुद्ध वीरता से युद्ध किया। परन्तु उस

की कार्य प्रणाली से उसको कम सफलता मिली। ब्राह्मसमाजियों को अब मालूम हो गया होगा कि माध्यमिक व्यवहार नीति से ही विजय प्राप्त हो सकती है। ब्राह्मसमाज इस समान-शत्रु को परास्त करने के लिये आर्यसमाज के साथ मिलकर यथा शक्ति प्रयत्न करे तो उत्तम है।

थियोसोफिकल सोसाइटी

इस सम्बन्ध में थियोसेफिकल सोसाइटी के विषय में भी कुछ कहना उचित है। यह सभा अपना मुख्य उद्देश्य सब लोगों में भ्रातृभाव फैलाना कहती है। ऐसी संस्थाओं को यथा शक्ति जातिभेद के दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये पर हमको शोक के साथ कहना पड़ता है कि ऐसा नहीं किया जाता। यह संस्था १८८१ ई० में आर्यसमाज से अलग हो गई। तब से इस सोसाइटी ने पौराणिक* हिन्दुओं की हां में हां मिलाने की व्यावहारिक नीति को ग्रहण कर लिया, और ऐसा करने में उसने अपने मुख्य सिद्धान्तों को भी कुछ त्याग दिया है। बहुत से विद्वान् थियोसोफिस्ट हिंदुओं को प्रसन्न करने के लिये उनके अयुक्त से अयुक्त विचारों की प्रशंसा करते हुये और विज्ञान व साइन्स से उनकी पुष्टि का

* भारतवर्ष में थियोसोफिकल सोसाइटी ने अपना काम श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिक्षण में प्रारम्भ किया था। स्वामी जी को सन् १८८० ई० में मालूम हुआ कि उसके संस्थापक ईश्वर के विषय में उनसे एक मत नहीं है, इसलिए सन् १८८१ ई० में उन्होंने थियोसोफिकल सोसाइटी से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया।

प्रयत्न करते हुये देखे गये हैं। यह बड़े दुःख की बात है कि वे उन कुरीतियों की भी प्रशंसा करते हैं, जो हिन्दुओं की अवनति की मुख्य कारण हैं। हिन्दुस्तान को महान् हानि करने वाले रिवाजों के विरुद्ध वे एक अक्षर भी नहीं कहते। वे जातिभेद के तिरस्कार में भी कुछ नहीं बोलते, यद्यपि यह उनके मुख्य सिद्धान्त सार्वजनिक भ्रातृभाव के बिल्कुल ही विरुद्ध है। सब मनुष्यों में समानता और भ्रातृभाव का उपदेश करना हमारा उद्देश्य है, ऐसा दम भरने वाली सोसाइटी हिंदुस्तान में जातिभेद के विरुद्ध कुछ यत्न न करे यह बड़े आश्चर्य की बात है।

थियोसोफी की नीति पहले और ही थी

जातिभेद और इस सभा का ऐसा भाव चाहे आकस्मिक हो, पर साधारण मनुष्य तो स्वभावतः यही समझते हैं कि पौराणिक हिन्दुओं को प्रसन्न रखने के लिये ही यह लोग चुप रहते हैं। पर हम दिखलायेंगे कि इस संस्था का प्रारम्भ में ऐसा भाव नहीं था।

बम्बई में फ्रामजी काऊस जी हाल में ता० २३ मार्च सन् १८७९ को सोसाइटी के संस्थापक व प्रधान कर्नल अल्काट (Col. Olcott) साहब ने जो व्याख्यान दिया उसके प्रस्ताव में लिखा है:—

"इस प्रकार हिंदुस्तान का और थियोसोफिकल सोसाइटी का हित एक ही है पर उन्नति करने के लिये प्रथम आवश्यक बात यही है कि हिंदुस्तान में भ्रातृभाव उत्पन्न हो। किसी

देश के महान् होने से पहिले उसके अभिमानी लोग निरभिमानी होने चाहिएँ। और जब ब्राह्मण लोग सब जातिभेद का तिरस्कार करके महार* के साथ हाथ मिलावेंगे और भाई के सच्चे प्रेम से उस को छाती से लगावेंगे तब ही थियोसोफ़िकल सोसाइटी समझेगी कि वह कुछ कर सकी है। तब ही वह अपने काम के लिये अभिमान करेगी और उस दिन ही हिन्दुस्तान की उन्नति और बड़ाई का आरम्भ होगा, और हिन्दुस्तान के लोगों में एकता का भाव उत्पन्न होकर एक जाति का प्रादुर्भाव होगा"। स्थानाभाव से हम अधिक प्रमाण देना नहीं चाहते परन्तु इस सोसाइटी के वर्तमान साहित्य में जो सन् १८६६ ईस्वी से अब सौ गुना हो गया है जातिभेद के तिरस्कार का ऐसा उग्रवाक्य जैसा कि उसके मान्य संस्थापक का ऊपर दिया गया है, एक भी नहीं मिलता।

भारतवर्षीय थियोसोफ़िस्टों का कर्त्तव्य

तो भी हम आशा रखते हैं कि यह सोसाइटी अपने मुख्य सिद्धान्त का अनुकरण करके वंश परम्परा की जातिभेद के विरुद्ध आवाज़ उठावेगी, "सार्वजनिक भ्रातृभाव" के सिद्धांत के प्रतिकूल जातिबन्धन के समान दूसरी कोई वस्तु नहीं। हम आशा करते हैं कि हिन्दुस्तान के थियोसोफ़िस्ट हिन्दुस्तान की अवश्यकताओं पर ध्यान देंगे। और अपने मूल सिद्धान्त का उत्साह के साथ निर्भय होकर प्रचार करेंगे, चाहे ऐसा

* महार दक्षिण में एक महा नीच जाति का नाम है।

करने में उन्हें अपने कट्टर जातिभेद ग्रसित हिन्दू भाइयों के विरुद्ध कहना क्यों न पड़े।

जातीय सभायें

जाति परिषद् और जाति मंडलों का जातिभेद से विचित्र सम्बन्ध है। उनका मूल उद्देश्य हिन्दूसमाज का सुधार है, पर वे वंशपरम्परा के जातिभेद को लेकर ही अपना काम करते हैं कि जो हिन्दूसमाज को और सब कुरीतियों की अपेक्षा अधिक कलङ्कित कर रहा है। यह विषय अर्वाचीन जातिभेद के साथ इतना घना सम्बन्ध रखता है कि हम इस विषय पर एक अलग प्रकरण लिखते हैं।

——::o::— —

५-जाति परिषद्

उनकी बढ़ती हुई सत्ता

हिन्दूसमाज में कुरीतियों को सुधारने की इच्छा पैदा होने से लोग जाति-मंडल स्थापित करने लगे। हिन्दुओं के मन में वंशपरम्परा के जातिभेद को जड़ इतनी गहरी जमी हुई है कि कोई आश्चर्य नहीं यदि इन सभाओं की संख्या बहुत शीघ्र बढ़ गई। स्थानिक सभाएँ ही नहीं किन्तु प्रान्तिक समाजें भी बन गई। इन सभाओं में कायस्थ सभा सबसे पहिले की थी। दूसरी जातियों ने भी शीघ्र उसका अनुसरण किया, इस प्रकार देश में इन उद्देश्यों को लेकर बहुत सी जाति सभाएँ

स्थापित हो गई। थोड़ी संख्या की जातियों ने वा उपजातियों ने भी अपनी-अपनी अलग कान्फ्रेंस वा सभा स्थापित कर ली, जैसे श्रीन कान्फ्रेंस, गौड़ सभा, सनाढ्य सभा, आदि २ के नाम सुने जाते हैं। इन सब का क्या परिणाम होगा ?

इन के परिणाम

जातिभेद सम्बन्धी पक्षपातों की पुष्टि

एक परिणाम तो साफ दीखता है। आर्य्यसमाज के उपदेश से और शिक्षा के प्रभाव से जो वंशपरम्परा के जातिभेद के वहम टूट रहे हैं उनको नई पुष्टि मिलेगी, यद्यपि यह थोड़े ही समय तक रहे। उन तङ्ग भेदों को जिनके कारण अब तक हिंदू लोग असंख्य छोटी-छोटी शाखों में विभक्त हो रहे हैं, पर जो अब टूटने आरम्भ हुए थे नया सहारा मिलेगा। दीर्घकाल से पराधीनता में रहे हिन्दुओं के हृदयों में जो राष्ट्रीयभाव और स्वदेशाभिमान के अंकुर पैदा होने लगे हैं, उनकी वृद्धि रुक जायगी और सामाजिक और राष्ट्रीय एकता का काम पीछे को हट जायगा। हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि हम इन सभाओं के स्थापकों की निन्दा करें कि जिनका अभीष्ट अवश्य उत्तम था। हम स्वीकार करते हैं कि उनमें बहुत से निःस्वार्थवृत्ति वाले स्वदेशाभिमानी और उच्च आशय से ही काम करने वाले थे। हम यह भी स्वीकार करते हैं कि ऐसी सभाओं ने हिन्दुओं की फ़जूलखर्ची में बहुत कुछ रोक लगाई है और इनसे कुछ सामाजिक सुधारों को भी सहायता मिली है, जैसे स्त्री शिक्षा, बड़ी उम्र में विवाह इत्यादि जिनका

प्रचार आर्य्यसमाज ने किया, परन्तु इन सभाओं द्वारा जाति-भेद के विचारों की पुष्टि से जो हानि होगी उसकी अपेक्षा इन सुधारों से होने वाला लाभ आधा भी नहीं है। चाहे ये सभाएँ अनुभव न करती हों, पर उनके सभासदों के दिलों पर साम्प्रदायिक संकुचित भाव बैठ जाते हैं—यह भय स्पष्ट है। इससे अधिक और क्या निराशा की बात होगी कि विद्वान् और ज्ञानवान पुरुष भी अधिकतर अपनी ही बिरादरी के मनुष्यों से सहानुभूति प्रकट करते हैं और इस प्रकार फिर उसी संकीर्ण जातिभेद के भावों में गिर पड़ते हैं कि जिनसे उद्धार करना हर एक समाजसुधारक का कर्त्तव्य होना चाहिये।

साम्प्रदायिक भावनाओं का पुनरुद्धार

इसमें अचरज भी क्या है क्योंकि जिन सभाओं में ऐसे पुरुषों को काम करना होता है उनकी नींव ही जाति व बिरादरी पर है। ऐसी सभाएँ जाति के नाम पर स्थापित होकर अवश्य ही बिरादरी के भावों को उत्तेजना देती हैं। ऐसी भावनाओं को स्वीकार करना ही जातिभेद का अस्तित्व है।

जातिमण्डलों का स्वाभाविक परिणाम

हर एक हिन्दू को जन्म परक जाति के स्वीकार करने की आदत पड़ी हुई है, इसलिये उन पर इन सभाओं का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। इन सभाओं की हवा में भी जातिभेद की गन्ध आ जाती है। किसी ऐसी सभा के उत्सव

में जाइये, आपको इन बातों की सत्यता का निश्चय हो जायगा। ऐसी अवस्था में स्वदेशाभिमान वा राष्ट्रीयभाव कभी नहीं उन्नति पा सकता। 'कौम' शब्द की मट्टीपलीद हो गई है। हम उसे जाति व बिरादरी का पर्यायवाची समझने लगे हैं! जातिमण्डलों के साधारण समासदों की सहानुभूति अपनी बिरादरी से बाहर के मनुष्यों के साथ बहुत कम होती है।

उनके काम के ढंग में दोष है

जातिममंडलों के संस्थापकों का मूल विचार चाहे ऐसा न रहा हो पर परिणाम ऐसा ही हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं काम करने की रीति ही दूषित है। इन सब सभाओं ने जातिभेद को दूर करने के प्रश्न को अपने सुधार के कामों में से निकाल दिया है, पर हिंदुस्तान में जिस सामाजिक सुधार में जातिभेद का सुधार न हो वह सुधार केवल नाम मात्र का है। जब तक ये सभाएँ संकीर्ण और साम्प्रदायिक भावों से काम करेंगी तब तक वे लाभ करने के स्थान में हानि अधिक पहुँचायेंगी।

जातिसभा और सम्मेलनों के सम्बन्ध में कुछ सुझाव:—

उपजातियों को मिलाकर एक जाति बनाना

क्या यह सम्भव है कि सामाजिक सुधार के कार्यक्रम में

शोधन करके जाति समाज और सम्मेलन देश के लिये उपकारी बन सकें ? हम एक ऐसा सुधार बतलाते हैं जिसको और समाजों की अपेक्षा, यह सभाएँ अधिक आसानी से कर सकती हैं। वह यह है कि छोटी-छोटी उपजातियों को मिलाकर एक जाति कर दिया जाय। इन सभाओं को पहिले एक जाति के छोटे-छोटे विभागों को मिलाने का प्रयत्न करना चाहिये। मुख्य चार जातियों में भी हर एक में असंख्य छोटे छोटे विभाग हो गये हैं। हिन्दूसमाज में विभक्त होने की रीति बहुत समय से चली आती है; उसी का यह परिणाम हुआ है। इसको उलटने का प्रयत्न इन सभाओं को करना चाहिए। उदाहरण के लिये वैश्य महासभा, वैश्य जाति की जुदी जुदी शाखाओं वा उपजातियों को धीरे-धीरे एक करने का यत्न करें। ब्राह्मण भी ऐसा ही करें। हम जानते हैं कि इस काम का सिद्ध होना कठिन है। पर जैसा बहुत लोगों का विचार है, यह अशक्य अथवा असम्भव नहीं है। जब एक ही जाति के बहुत से छोटे-छोटे विभाग हो गये, तो क्या सब छोटी-छोटी जातियाँ मिलकर एक नहीं हो सकतीं ? यह सुधार बिलकुल सम्भव है। अपने पौराणिक भाइयों को भी हम इसे स्वीकार करने के लिये कह सकते हैं, क्योंकि हिन्दूधर्म के किसी भी ग्रन्थ में और हाल के पुराण और उपपुराणों में भी इन छोटे-छोटे विभागों का पता नहीं मिलता। इन ग्रन्थों में अथवा हिन्दूधर्म के किसी भी ग्रन्थ में ब्राह्मणों का ब्राह्मण वर्ण में क्षत्रियों का क्षत्रिय वर्ण में और वैश्यों का वैश्य वर्ण में परस्पर विवाह और सामाजिक व्यवहार मना नहीं है। और एक ही मुख्य जाति की जुदी जुदी शाखाओं में रीति रवाज और क्रियाओं का भी कुछ भेद नहीं है।

हम संतोष पूर्वक लिखते हैं कि इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद कुछ उदार जातियों ने इस आवश्यकता को स्वीकार कर लिया है। उदाहरण के लिये वैश्य महासभा ने अपने १५ वें अधिवेशन में जो १४।२।०८ को मेरठ में हुआ था अग्रवालों को जैन और वैशाव शाखाओं में और कदीमो न राजवंशी अग्रवालों में परस्पर विवाह की आज्ञा दे दी थी। सन् १६४४ के दिसंबर में जो मेरठ में अधिवेशन हुआ उसमें यह निश्चय हुआ कि "यह,अ. भा. वैश्य महासभा अति आवश्यक समझती है कि आपस में प्रीति बढ़ाने के लिये वैश्य जाति की सब शाखाओं में परस्पर खान-पान तथा विवाह आदि का सम्बन्ध यथा साध्य बढ़ाया जावें।

कायस्थ महासभा में सन् १६०५ के दिसम्बर में सब कायस्थ जातियों में परस्पर विवाह होने का प्रस्ताव पेश हुआ था, पर बहुत लोगों के विरोध के कारण वह मुल्तवी रहा। सन् १६०७ ई० में वह फिर मुल्तवी हुआ, परन्तु 'कायस्थ परस्पर विवाह' नाम की एक जुदी सभा स्थापित हो गई। अन्त में सन् १६०८ के दिसम्बर मास की बैठक में कायस्थ कान्फ्रेंस ने यह प्रस्ताव पास कर दिया कि कायस्थों की उपजातियों में परस्पर विवाह होने का समय आगया है। क्षत्रिय महासभा द्वारा इस विषय पर कोई निश्चय होने वा न होने की सूचना नहीं मिल सकी। परन्तु कई प्रतिष्ठित क्षत्रियों ने बतलाया कि क्षत्रियों की सब उपजातियों में परस्पर विवाह होते हैं, कोई रोक टोक नहीं।

ब्राह्मणों की गौड़, सनाढ्य और सारस्वत शाखाओं में

परस्पर विवाह बहुत वर्षों से होते थे। कुछ वर्ष हुये स्वर्गीय महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी ने जिनका भारतवर्ष भर में मान था अपने परिवार के एक विवाह के अवसर पर भारत की सब प्रमुख ब्राह्मण जातियों के प्रतिनिधियों को एकत्रित करके इस प्रश्न को उनके सामने रक्खा तो यह विचार ठहरा और स्वर्गीय मालवीय जी ने भी उसके लिये अपनी अनुमति दी कि ब्राह्मण कहलाने वाली जिन जातियों में मांस भक्षण वर्जित समझा जाता है उन जातियों में परस्पर विवाह हो सकते हैं।

एक और भी कारण है जिससे एक ही मुख्य जाति की शाखा प्रशाखाओं में परस्पर विवाह करना इस समय बहुत सरल और व्यवहारिक उपाय है। आर्य, सिक्ख, ब्राह्मसमाजी जैन इत्यादि सब हिंदू दायभाग के विषय में हिंदू धर्म शास्त्र के अनुयायी हैं। यद्यपि मनु और अन्य स्मृतिकारों ने अनु-लोम रीति के अनुसार एक वर्ण से दूसरे वर्ण में विवाह करने की आज्ञा दी है, तो भी हाल के स्मृतिकारों ने उसे वर्जित लिखा है। यह रोक टोक प्राचीन नहीं, यह बात बिल्कुल सत्य है। हिंदू धर्मशास्त्र के प्रसिद्ध ज्ञाता मिस्टर मेन ने लिखा है—

"जुदी जुदी जातियों के मनुष्यों में विवाह का वर्जन नवीन है। पहिले एक वर्ण के मनुष्य का नीचे वर्ण की स्त्री के साथ और शूद्र स्त्री के साथ भी विवाह हो सकता था।"
(Hindu Law and Usage P. 106

आगे चलकर इसी फेर फार का कारण बताते हुये मिस्टर मेन लिखते हैं:—"जुदे जुदे वर्ण के मनुष्यों में परस्पर विवाह बहुत दिनों से बन्द हो गया और उस ही विचार के कारण ऐसी असंख्य जातियाँ बन गईं, जिन में एक दूसरे के साथ रोटी-बेटी का व्यवहार नहीं होता।" (Hindu Law and Usage P. 107)

इन नवीन स्मृतिकारों के मतानुसार हाईकोर्ट ने ऐसे विवाहों को वर्जित ठहराया है। जब तक विवाह विषय में क़ानून यह है, तब तक जुदी जुदी मुख्य जातियों में परस्पर विवाह की बात करने में बड़ी अड़चन थी। यद्यपि सिविल मैरिज एक्ट (३ सन् १८७२) ऐसे विवाहों की आज्ञा देता है, पर उसके अनुसार विवाह करने वालों को स्वीकार करना पड़ता है कि वे हिन्दू नहीं हैं। इस का फल यह निकला कि बहुत थोड़े लोगों ने इस एक्ट से लाभ उठाया है, और भविष्य में भी बहुत से लोग इससे फ़ायदा नहीं उठा सकते* परंतु इस कठिनाई को दूर करने के लिये सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने एक नया क़ानून Arya marriage Act आर्य विवाह विधान सारे भारतवर्ष के लिये प्रचलित करा दिया—जिसका वर्णन अन्यत्र किया गया है।

६-हिन्दू-महासभा का कार्य

हिन्दू महासभा एक सुसंगठित और बड़ी संस्था है जिसकी

---

* शोक है कि इस एक्ट को शोधन करने का जो प्रस्ताव श्री भूपेन्द्रनाथ बसु ने लेजिसलेटिव कौन्सिल में पेश किया था वह पास नहीं हो सका।

भारतवर्ष भर में प्रान्तीय तथा स्थानीय शाखाएँ हैं। उसका मुख्य कार्य राजनैतिक है परन्तु सामाजिक सुधार उसके कार्य क्षेत्र से बाहर नहीं। इसके अतिरिक्त जातिभेद का दूर करना केवल सामाजिक सुधार ही नहीं है किन्तु राजनैतिक दृष्टि से भी उसका वैसा ही महत्व है। अध्याय तीन के ८ अँशार्थ में जो कहा गया उससे यह बात स्पष्ट है। हिन्दू महासभा के लिये इस सुधार कार्य को करना जाति-सभाओं की अपेक्षा अधिक सुगम और उपयुक्त है क्योंकि जातीय सभाओं को जिनका आधार जातिभेद पर ही है उसको मिटाने का यत्न करना असंभव ही है। आशा करनी चाहिये कि हिन्दू-महासभा जन्मगत जाति-पाँतों को मिटाने के महत्त्वपूर्ण कार्य को अपने हाथ में लेगी जिससे यह जातिभेद दूर होकर एक दृढ़ और सुसंगठित हिन्दू जाति बन सके।

इस उद्देश्य को दृष्टि में रख कर महासभा का कर्त्तव्य है कि वह अछूतोद्धार के समान जन्मगत जातिभेद के निवारण को भी अपने कार्यक्रम में शामिल करें। और भिन्न-भिन्न जातियों व उपजातियों के बीच अन्तर्जातीय विवाहों के प्रचार में जातिभेद निवारक आर्य परिवार संघ का सहयोग करें हम आशा करते हैं कि हिन्दू-महासभा इस अपील पर उचित ध्यान देवेगी।

७–धारा सभाओं का कार्य्य

कांग्रेस मन्त्रि-मंडलों के अधीन बहुत से प्रान्तो में शूद्रों को दशा सुधारने और उनके कष्टों को दूर करने के अभि-

प्राय से उपयुक्त कानून बनाने का कार्य आरम्भ हो गया है। बहुत से स्थानों में हरिजनों के बालकों को सरकारी मदरसों में भी अन्य विद्यार्थियों के साथ बैठने में अड़चन की जाती है। हरिजन गाँव के कुओं से पानी नहीं भर सकते। दक्षिण भारत में उनको सरकारी सड़कों पर भी चलने में रुकावट होती है। इन अन्यायपूर्ण रुकावटों को दूर करने के लिये मंत्रि-मंडल की ओर से आज्ञाएँ जारी हो चुकी हैं। यदि इन विषयों के सम्बन्ध में उचित कानून बन जायें तो जो लोग पूर्वोक्त आज्ञाओं का पालन न करें उनको न्यायालयों द्वारा दन्ड भी दिया जा सकेगा। इससे बहुत लाभ होगा। हर्ष का विषय है कि भारतीय विधान परिषद् ने भी अस्पृश्यता विरोधी धारा स्वीकृत की है, जिसमें केवल से कोई भी अस्पृश्य वा नीच न होगा।

परन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है यह कठिनाइयाँ उतनी राजनैतिक नहीं जितनी सामाजिक हैं और इसलिये वे तभी दूर हो सकेंगी जब कि सवर्ण हिन्दुओं के हृदयों में परिवर्तन हो जावे।

८—जातिभेद की ओर ठीक-ठीक वर्ताव

इस हानिकारक प्रथा को दूर करने का दूसरा उपाय जातिभेद की तरफ़ ठीक ठीक वर्ताव रखना है। जो हम मन से जातिभेद को अनुचित समझते हैं तो असली तौर पर भी हमें इस से घृणा करनी चाहिये। हमें सब के साथ व्यवहार करते हुये ज़ाहिर करना चाहिए कि हम सद्गुण और भलाई

का मान करने वाले हैं, चाहे वे किसी में क्यों न हों। जो मनुष्य उच्च जाति में पैदा हुआ है पर जिसका चरित्र दूषित है, उसका आदर नहीं करना चाहिये, और नीच जाति में होने के कारण किसी भी मनुष्य का तिरस्कार नहीं करना चाहिये। इस प्रकार महत्व से हीन ब्राह्मणों का मिथ्या अभिमान जाता रहेगा और शूद्रों में आत्म सम्मान के बढ़ने से वह अपने विचार उच्च कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त हमें किसी जाति या व्यवसाय के लिये निन्द्य नाम का प्रयोग नहीं करना चाहिये, और किसी भी काम को शूद्रों के हाथ में होने के कारण धिक्कारना नहीं चाहिये। हमें याद रखना चाहिये कि ईमानदारी और उद्योग के साथ काम करने पर सब काम प्रतिष्ठा के योग्य हैं। किसी मनुष्य के नीच होने का कारण उसका व्यवसाय या धन्धा नहीं किन्तु उसका अशुद्ध अन्तःकरण है। इस प्रकार के व्यवहार से जातिभेद सम्बन्धी वहम दिन बदिन कम होते जायेंगे और जन समूह की दृष्टि में नीचे गिने जाने वाले काम अच्छे प्रतीत होने लगेंगे, और इस से भारतवर्ष के गिरे हुए उद्योग में पुनः जीवन का सञ्चार होगा। जब शूद्र देखेगा कि वह सदाचारी होने पर केवल अपने जन्म के कारण नीच और दूषित नहीं ठहराया जाता, और धिक्कारा नहीं जाता तो वह सदाचारी बनने और मान प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा। इस से हिन्दूसमाज के बल में बड़ी वृद्धि होगी। ब्राह्मण जब देखेंगे कि केवल जन्म से उन्हें कुछ सन्मान नहीं मिलता तो वे भी उन अधिकारों के योग्य बनने की चेष्टा करेंगे जिनको कि वे बहुत दिनों से भोगते आए हैं और जिन की वे अब भी अभिलाषा रखते हैं। इस प्रकार भी इससे हिन्दूसमाज का बहुत ही उपकार होगा।

उपसंहार

हम बतला चुके हैं कि जातिभेद प्राचीन धर्मशास्त्रों के आधार पर नहीं, और उससे हिन्दुओं को बड़ी ही हानि पहुँची है। इन हानियों को दूर करने के लिये हमने कुछ उपाय भी बतलाए हैं। क्या हम अपने भाइयों से प्रार्थना सकते हैं कि इस कुरीति को जड़ मूल से उखाड़ने के लिये प्रयत्न करें ?

इस काम की कठिनाइयाँ

यह कोई सहल काम नहीं है। दो हज़ार वर्ष से अधिक समय बीता कि महात्मा बुद्ध ने इस दुष्ट जातिभेद की बुराइयाँ लोगों को बड़े जोर के साथ में बतलाई। बौद्धधर्म देश के एक किनारे से दूसरे किनारे तक फैल गया और लगभग १०० वर्ष तक रहा। ऐसा प्रतीत होता था कि बुद्धदेव ने जातिभेद को प्राणान्त कर दिया, पर फिर भी जातिभेद का लोप नहीं हुआ। बुद्धधर्म की अधोगति हुई और वह इस देश से बिल्कुल लुप्त हो गया, पर जातिभेद न गया। इतना ही नहीं किन्तु

हिन्दूधर्म के पुनरुद्धार के साथ उसकी इतनी बड़ी उन्नति हुई कि उसने हिन्दू समाज के असंख्य छोटे-छोटे टुकड़े करके उसकी एकता का नाश कर दिया। २५०० ढाई हजार वर्ष के बाद स्वामी दयानन्द को फिर इसी जातिभेद रूपी शत्रु के विरुद्ध युद्ध करना पड़ा। इन दो चिरस्मरणीय महानुभावों के बीच के समय में बहुत से दूसरे सुधारक हो गये हैं। उन्होंने भी धर्म की दृष्टि में सब लोगों के समान होने का उपदेश किया। रामानन्द, कबीर, चैतन्य, दादू नानक, राजाराममोह- न देशोपकारकों के पवित्र नाम सदा प्रेम और भक्ति के साथ लिये जायेंगे, सब नीच कुलोत्पन्न शूद्रों की उन्नति करने वाले वीर पुरुष थे, परन्तु इन महान् पुरुषों के यथा शक्ति प्रयत्न करने पर भी जातिभेद हिन्दुओं के दिलों को जकड़े हुए हैं और उसके बड़े बन्धनों को तोड़ने की बहुत थोड़े लोगों की हिम्मत है। नये सम्प्रदायों पर भी उसने अपना असर जमा लिया। हिन्दुस्तान में बौद्धधर्मी अब बहुत थोड़े हैं, पर जैन लोग जिनका धर्म बौद्धधर्म से बहुत कुछ मिलता है कुछ दिनों के बाद जातिभेद को स्वीकार करने लगे हैं। सिक्खों की भी ऐसी ही दशा हुई। मुसलमान और ईसाई भी इसके असर से सर्वथा नहीं बच सके।

परन्तु निराशा की कोई बात नहीं

इस हानिकारक रीति को जड़ मूल से उखाड़ने में हिन्दू सुधारकों को जिन कठिनाइयों का सामना करना है, उनका कुछ अन्दाजा पाठकों को हो गया होगा। सर हरबर्ट रिज्ली

जिनकी पुस्तक में से हमने बहुत से प्रतीक दिये हैं, यहाँ तक लिख गये हैं कि:—"जब तक हिन्दूधर्म की वर्तमान शक्ति कम नहीं होगी, तब तक जातिभेद अपना पुराना राज्य करता रहेगा और मुसलमानों अथवा ईसाइयों की अधिक वृद्धि ही हिन्दुओं के सामाजिक और धार्मिक भविष्य में परिवर्तन पैदा कर सकती है"। (Peoples of Indid P. 236) तो क्या हिन्दूधर्म को निर्मूल करने के सिवाय या उसका बल कम करने के सिवाय हिन्दुस्तान की उन्नति और जाति भेद के नाश का और कोई उपाय नहीं है ? यदि हिन्दूधर्म से तात्पर्य वह धर्म है जो आज कल भारतवर्ष में फैला हुआ है और जो वैदिकधर्म के बिगड़ने से बना, तो ऊपर का कथन बिल्कुल सत्य है। पर यदि हिन्दूधर्म का वेद और उपनिषदों के धर्म से तात्पर्य है तो यह बिल्कुल झूंठ है, क्योंकि वेद और उपनिषद् वंश परम्परा के जातिभेद को स्वीकार नहीं करते। वैदिकधर्म ईश्वर के पितृत्व का और सब मनुष्यों के भ्रातृभाव का उपदेश करता है, और सब को कर्मानुसार अधिकार देता है ऐसा करके ही प्राचीन आर्य्य उन्नति में अग्रसर हुए और बहुत से उद्योग व्यवसाय ज्ञान विज्ञान को जिन का संसार इतना मान करता है स्थापित कर गये। निराश होने का कोई कारण नहीं। हमें याद रखना चाहिए कि "सत्यमेव जयते नानृतम्" सत्य की ही जय होती है झूंठ की नहीं।

सहायता की प्रार्थना

इसलिये हम को उद्योग करना चाहिये। इस हानिकारक रीति को अपने अन्दर से जड़मूल से नष्ट करने के लिये हमें यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिए। यह संस्था हमारे मनुष्यत्व पर कलंक रूप है, हमारे धर्म पर धब्बा है, हमारे स्वदेशाभिमान को लजाने वाला है और हमारी प्राचीन सभ्यता का अधःपतन है। इस को जड़मूल से नष्ट करने के लिये हमें सच्चे उत्साह से काम करना चाहिये। ईश्वर अवश्य सहायता करेंगे।

सूचीपत्र

पुस्तक	मूल्य
अछूतों का सवाल (उर्दू)	-)
अविद्या के तीन अङ्ग	-)
आर्य-पर्व-परिचय	=)
आत्मोपनिषद्	-)
आर्य्यों का प्राचीन गौरव	।=)
इङ्गलैण्ड का इतिहास	॥)
ईश्वर प्राप्ति और उसके साधन	-)
उपनिषद्-तत्वम्	१)
कलावती उपन्यास	।≡)
गायत्री-उपनिषद्	॥)
ज्योतिश्चंद्रिका	≡)
ज्ञान की उत्पत्ति	-)
जन्मशताब्दी-उपहार	-)॥
जैन धर्म काल के उत्पत्तिकाल का निर्णय	-)
जीवनोद्देश्य	॥)
तामिल सत्यार्थ प्रकाश	३)
आर्योद्देश्य रत्नमाला	)।
नानकजी की जीवनी	-)
पंचकोष और सूक्ष्म जगत्	≡)॥
प्रमाण सहस्रो	१॥)
पैप्पलाद संहिता हिंदी अनुवाद	।)
महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा उनसे सम्बन्ध रखने वाली कुछ बातों का विशेष विवरण	॥।)
महर्षि जीवन दर्शक	॥)
कर्तव्य दर्पण	१।)
मद्यपान महापाप है	॥)
सत्यनारायण व्रतकथा रहस्य	॥)
पंच महायज्ञ-विधि	-)॥
मन की लहर	॥)
मानसिक चिकित्सा	॥)
(सुखमय जीवन) मनुष्य-समाज	-)
यजुर्वेद-संहिता प्रथम भाग	२।)
यजुर्वेद-संहिता द्वितीय भाग	३)
भ्रान्ति निवारण	=)
स्व. ला. लाजपतरायजी की जीवनी	-)
सूर्यसप्ताश्व वर्णन	-)
सैनिक कवायद	=)
साधु सन्यासी (उर्दू)	-)
सत्यार्थ प्रकाश	१॥)
संस्कार विधि	॥।)
संध्योपासन विधि	-)
सत्यार्थ प्रकाश पर विचार	-)
समुद्र गुप्त	॥=)
सांख्य दर्शनम्	॥)
स्त्री ज्ञान दर्पण	॥)
शरीरोपनिषद्	-)